संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : अंक २२ ● ३० मई २०२४ (गुरुवार) ज्येष्ठ कृष्णपक्ष सप्तमी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

वेद और आर्य समाज देश व समाज की प्रमुख सम्पत्ति व शक्ति हैं

-मनमोहन कुमार आर्य

आर्यसमाज का अस्तित्व वेद पर आधारित है। वेद ईश्वरीय ज्ञान और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद ज्ञान व विज्ञान से युक्त व इनके सर्वथा अनुकूल है। वेद विद्या के ग्रन्थ हैं। वेद में अन्य ग्रन्थों के समान, कहानी किस्से व किसी आचार्य व मत प्रवर्तक के उपदेश नहीं हैं अपितु वेदों में इस जगत के रचयिता परमेश्वर के मनुष्यों की सर्वांगीण उन्नति करने सहित उसे दुःखों से सर्वथा मुक्त कर मोक्ष प्रदान करने वाली शिक्षायें एवं उपदेश हैं। परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में जब मनुष्यों को उत्पन्न किया तो उन्हें कर्तव्य व अकर्तव्य का बोध कराने के लिये चार वेदों का ज्ञान दिया था। यदि परमात्मा ऐसा न करता तो मनुष्य न तो भाषा को उत्पन्न कर सकते थे और न ही सत्यासत्य का निर्णय कर सकते थे। परमात्मा ने मनुष्यों व सभी प्राणियों के शरीरों को बनाया है। मनुष्य आज तक इतना सक्षम व समर्थ नहीं हुआ कि वह मानव व प्राणी शरीर तो क्या, अपने व दूसरों के शरीर का एक अंग व प्रत्यंग ही बना सके। इसी प्रकार से परमात्मा प्रदत्त बुद्धि को ज्ञान को प्रदान करने वाली भाषा व सद्ज्ञान भी परमात्मा ही देता है। मनुष्य का काम केवल परमात्मा की भाषा व ज्ञान को समझना व उससे उपकार लेना है। वह न तो वेदों की भाषा को और न उसके समान किसी अन्य भाषा को बना सकता है और न इस सृष्टि के बनाने व इसमें जीवन व्यतीत करने की जो आदर्श जीवन पद्धति है, उसका ही निर्माण कर सकता है। यह सब वस्तुयें व ज्ञान आदि उसे परमात्मा से सृष्टि के आरम्भ में ही प्राप्त हुईं थी। वेद की शिक्षाओं को जानना व उसके अनुरूप आचरण करना ही मनुष्य का कर्तव्य व धर्म है। इससे दूर होने पर मनुष्य अनेक विकृत विचारों, अज्ञान व मिथ्या मान्यताओं में फंस जाता है। वह अज्ञान व स्वार्थों के वशीभूत होकर सत्य से दूर जाकर सत्य को ही स्वीकार करना छोड़ देता है। वह अपने व अपने पूर्व आचार्यों के

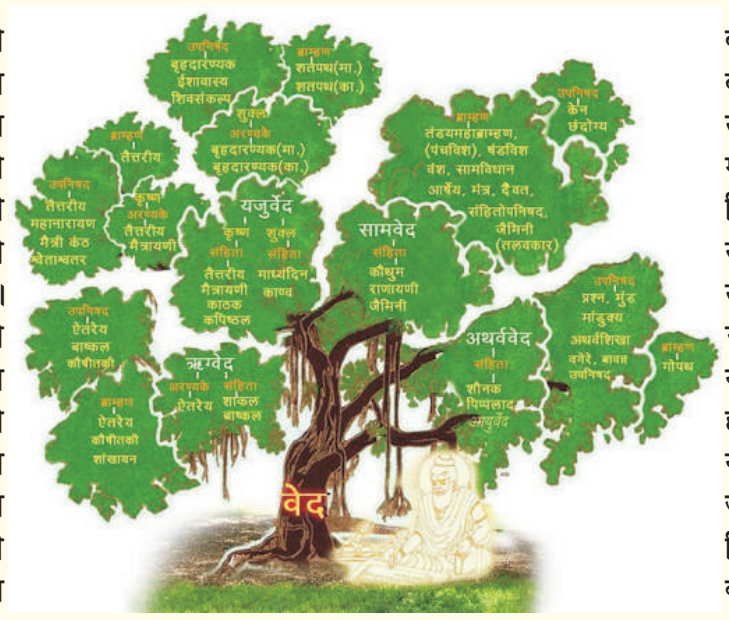

मार्गों को ही सबसे उत्तम व लाभप्रद मानकर उनका अविवेकपूर्वक समर्थन व व्यवहार करता है। ऐसा ही हमें इतिहास में देखने को मिलता है। मनुष्य की बुद्धि पवित्र हो तभी वह सत्कर्मों को करने में प्रवृत्त होता है अन्यथा वह अपने जीवन में परम्परा से प्राप्त सत्य व असत्य परम्पराओं को ही अपने ऊपर ओढ़कर बिना सत्य व असत्य का विचार किये उन्हीं का निर्वहन करता रहता है।

एक सामान्य व्यक्ति जो मत-मतान्तरों की सत्यासत्ययुक्त शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता है वह वेदों के महत्व को तब तक नहीं समझ सकता जब तक की वह पक्षपातरहित व शुद्ध मन व प्रवृत्तियों वाला न हो। जब तक मनुष्य में अपने मत के प्रति आग्रह व दुराग्रह होता है, वह इतर मतों के सत्य व अधिक महत्वपूर्ण ज्ञान व विवेकपूर्ण बातों को स्वीकार करने की सामर्थ्य नहीं रखता। सत्य को यदि स्वीकार करना हो तो मनुष्य को योग की शरण में जाकर यम व नियमों का पालन कर अपने जीवन को सत्य व शुद्ध विचारों से युक्त करना होता है। ऋषि दयानन्द वेदज्ञान को इसलिये प्राप्त कर सके क्योंकि उनमें सत्य को जानने के प्रति तीव्र भावना व इच्छा शक्ति थी। वह किसी भी बात को बिना परीक्षा किये स्वीकार नहीं करते थे। मूर्तिपूजा को वह इसलिये स्वीकार नहीं करते थे कि मूर्ति में ईश्वर के समान चेतनता, ज्ञान, सामर्थ्य, जीवों वा प्राणियों को सुख प्रदान करना, मनुष्यों को सद्प्रेरणा करना आदि जैसी बातों का अभाव होता है। मूर्ति तो अपने वस्त्र भी नहीं बदल सकती और न ही हिलडुल सकती है। इस कारण ऋषि दयानन्द को मूर्ति की शक्तियों में सन्देह हो गया था जिसे उस समय के मूर्तिपूजा करने वाले विद्वान उन्हें समझा नहीं सके थे। इससे उनमें सत्य ज्ञान की प्राप्ति का भाव व संकल्प उत्पन्न हुआ था। इस विचार व भावना ने ही उन्हें सच्चा जिज्ञासु तथा सत्यान्वेषी बनाया था।

अपनी आयु के २२वे वर्ष में ऋषि दयानन्द धार्मिक विद्वानों की संगति को प्राप्त हुए। उनसे उन्होंने धर्म वा अध्यात्म विषयक ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने उस प्राप्त ज्ञान की विवेचना की। सत्य व बुद्धिसंगत

क्रमशः.....७ पर

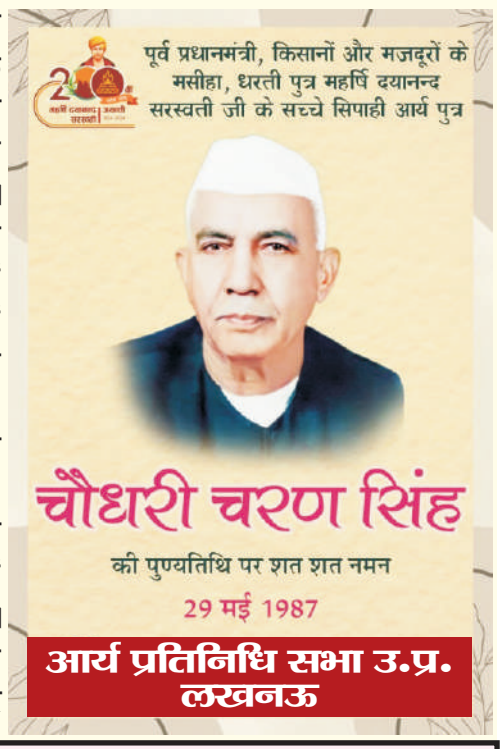

वेदामृतम्

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति, तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वयं मनीषाम्, ऋतस्य पदे कवयो निपान्ति।।
ऋ० १०.१७७.२

मनुष्य में वाणी परमात्मा की ओर से दी हुई विशेष देन है। मनुष्य व्यक्त वाणीवाला है, जबकि अन्य प्राणी अव्यक्तवाक् होते हैं। मनुष्य स्पष्टतया अपनी वाणी से परस्पर विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है। इस अद्वितीय शक्ति के रूप में प्राप्त वाणी का प्रयोग मानव कैसे करे ?

जिस स्थूल वाणी को हम लोकव्यवहार में बोलते हैं, वाणी का एकमात्र वही रूप नहीं है। स्थूल रूप में बोली जानेवाली वाणी को पहले 'पतंग' आत्मा विचार-रूप से गन्धर्व-रूप मन में धारण करता है। पक्षीवाचक पतंग यहाँ जीवात्मा का नाम है, क्योंकि जीवात्मा पक्षी के समान ज्ञान-कर्म-रूप अपने पंखों से उड़ता रहता है, जीवन की गति को करता रहता है। मन गन्धर्व है, क्योंकि वह अपने अन्दर सूक्ष्म वाणी को धारण करता है। जिह्वा के दन्त, ओष्ठ, तालु आदि में संयोग से वाणी का उच्चारण बाद में होता है, उससे पूर्व वह विचार-रूप से मन में आ जाती है।

मन से प्रेरित होकर प्राणवायु के बाहर निकलते समय जिह्वा के कण्ठ-तालवादि संयोग से स्वर-रूप में परिणत होनेवाली उस वाणी को कवि-जन सत्य के पद में प्रतिष्ठित करते हैं, सत्य वचन बोलने में प्रयुक्त करते हैं और सत्य के पद अर्थात् सत्य के परमाधार सत्यस्वरूप परमेश्वर के महिमा-गान में व्यय करते हैं। जो वाणी मनुष्य के लिए परमेश्वर की अद्वितीय देन है, उसे यदि हम असत्य-भाषण में या अश्लील वर्णन में प्रयुक्त करें तो हम जैसा अभागा कौन होगा ? अतः आओ, हम कवि बनें, सरस्वती के सच्चे उपासक बनें, क्रान्तदर्शी बनें, स्वान्तः-सुख तथा जन-सुख के लिए प्रभु-महिमा के काव्य रचें, वाणी से परमेश्वर की सत्ता और आस्तिकता का प्रचार करें, तथा जो सत्य है उसका निर्भय होकर प्रचार करें। साथ ही जो कुछ वाणी से बोलना है, उसका बोलने से पूर्व मन में सुविचार कर लें, क्योंकि सहसा अविचारित वाणी बोल देने से संसार में बड़े-बड़े अनर्थ होते रहे हैं, और भविष्य में भी उनका होना अनिवार्य है। मन से भलीभाँति विचारकर वाणी से सत्य को प्रकट करने की मेधावियों की कला हम यदि सीख लें, तो हमारा महान् कल्याण हो सकता है। साभार-वेदमंजरी

आवश्यक सूचना

सभी पदाधिकारियों, प्रतिष्ठित, अन्तरंग, सहयुक्त सदस्यों, आदि को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा की बैठक दिनांक १६ जून, २०२४ दिन रविवार, तदनानुसार ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष दशमी संवत् २०८१ स्थान-महात्मा नारायण स्वामी आश्रम, रामगढ़ तल्ला, नैनीताल (उत्तरांचल) में समय प्रातः ११:०० बजे आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. लखनऊ के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न होगी।

एजेण्डा डाक द्वारा भेजा जा चुका है। कृपया समय से उपस्थित होकर बैठक को सफल बनावें।

पंकज जायसवाल
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र.
लखनऊ

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री कुँवर चांदकरण जी शारदा का भाषण

हमारे पूर्व पुरुषों ने भी आत्म-बलिदान किया है, हम इस बात को सोच नहीं सकते । जिस जमाने में राम रावण से लड़ता है, भगवान् कृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का वध करते हैं, हिरण्यकश्यप की आज्ञा न मान कर प्रहलाद चिता में खड़ा होता है, उस जमाने में दिशायें रक्तवर्णा हो जाती थीं। उस समय एक ओर राजपूत खड़े होते थे और दूसरी ओर मुसलमान आते थे। राजपूत केसरिया जामा पहिन कर खड़े होते थे। उनका सिंहनाद सुन कर कायर पुरुष भी एक बार बीर हो जाते हैं। हा हन्त ! आज उनकी ऐसी दशा ! क्षत्रियों की प्रार्थना थी, हे भगवन् ! हमें नीचों के सामने शिर नीचा न करना पड़े।'' जिस समय चित्तौर के किले की मूर्तियां नष्ट हो गई और स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं, उस समय एक राजपूत, जयमल से कहता है, कि क्षत्रियों के लिये खड़ा रहना अनुचित है। मेरे लिये रणभूमि स्वर्ग है।'' वहां वह जयमल को कन्धे पर लेकर जाता है और रण में मर जाता है। आज तक मेवाड़ में उसका चित्र बना है जिससे जोश उत्पन्न होता है।

जसवन्तसिंह के सेनापति ने औरंगजेब को सलाम नहीं किया। अतः औरंगजेब ने उसे घोर दण्ड दिया। वह औरंगजेब के सन्मुख कहता है, ''मेरा सिर तुम्हारे हाथ में नहीं है।'' वह फिर कहता है, 'जसवन्तसिंह के सन्मुख झुकने वाले सिर, तुम औरंगजेब के सामने मत झुको। तुम इसके सन्मुख झुक कर मर्यादा को कम न करो।' मुकुन्द दास कहता है कि राजपूतों का यह धर्म नहीं है कि शत्रु को पीठ दिखा दें। अहा ! ऐसे वीर क्षत्रिय आपकी मर्यादा को स्थिर रखने वाले थे।

जिस समय गुरु गोविंदसिंह रण में जाने लगे, उस समय उनके किसी लड़के को प्यास लगी। गुरु गोविंद सिंह कहते हैं, 'हे कायरो ! तुम जल पीने के लिए आते हो। वीरों की प्यास खून से बुझा करती है।' आपकी आन और सभ्यता की रक्षा करने के लिए गुरु तेग बहादुर और अर्जुन कैसे-कैसे अनुकरणीय उदाहरण दिखला गये ।

आर्य ब्राह्मणों में से मतिदास कैसे हुए। उनको आरे से चीरे जाने की आज्ञा हुई। परन्तु वह ब्राह्मण मतिदास ओम ओ३म् कहता हुआ चीरा जाता है।

बल्लजी चम्पावत थोड़े से लोगों को लेकर युद्ध में जाता है, उसकी धर्मपत्नी भी साथ है। सहस्रों मुसलमानी फौजों से सामना होता है। बल्लजी मारा जाता है और धर्मपत्नी पतिदेव से मिलने के लिए सती होकर स्वर्ग यात्रा करती है। वह वीर पत्नी यवन को अपने पति का शव नहीं छूने देती। किस प्रकार देवरदे अल्हारूदर को प्रोत्साहित करता है और रण में जाता है। जिस समय हाड़ा जी मारा गया और उसकी वृद्धा माता को सूचना दी गई, उस समय वह रोने नहीं लगी। वह पूछने लगी, मेरा पुत्र मार कर मरा वा मार खाकर मरा है? सिपाही ने उत्तर दिया, 'माता जी ! तुम्हारा पुत्र मार कर मरा है।' सिपाही के ये शब्द सुन कर वह बड़ी प्रसन्न हुई । कर्नल टाड साहिब लिखते हैं कि उसके स्तनों से दूध बह चला। उस समय माता कहती है, 'बेटा जाओ। तुमने मेरे दूध को नहीं लजाया।'

जिस समय जसवन्तसिंह रणभूमि से लौट आये उनकी स्त्री ने घर के सब दरवाजे बन्द कर दिये और कहने लगी, ''मैं ऐसी नहीं हूँ कि भागे हुए पति का स्वागत करू' । जब तक जिओ, तब तक रणभूमि में पीठ न दिखाओ। जब मर जाओगे, तो मैं भी सती हो जाऊंगी।

एक बात सुनकर बीर बिदुला अपने पुत्र को क्या उपदेश देती है? जिस समय गोरक्षा से मुंह मोड़कर कुवर लौटकर आ गया था उस समय उसकी पत्नी ने घर का दरवाजा नहीं खोला। उसने कहा कि मरने से पहिले अपनी प्राणप्यारी का मुख देख लूं। तब उस पत्नी ने अपनी गर्दन काट थाली में रख दरवाजे पर रख दी। उसने अपने पति को रणभूमि से लौटता हुआ देख कर घर में नहीं आने दिया।

जब १२ वर्ष का बालक शलुमनराव जी युद्ध में जाने लगा तो लोगों ने उसे वहां जाने से रोका। लोगों ने कहा, ''शलुमन ! तुम्हारी अवस्था कम है, तुम युद्ध में नहीं लड़ सकते। तुम युद्ध में मत जाओ।'' इस पर उस वीर बालक ने कहा, ''भले ही में १२ वर्ष का हूँ, परन्तु मेरी आत्मा तो १२ वर्ष की नहीं है।''

हम उस वाक्य को भूल गये जो बीर प्रताप ने कहा था । उसने कहा था, ''आप लोग धर्म के लिये बलिदान हो जाओ । जिस जाति ने यह कहा था, (This world is not meant for beggare- It is for the conquerors) ''यह संसार भिखारियों के लिये नहीं है, वरन विजयी पुरुषों के लिए है।'' आज यही जाति पद-पद पर दुखी हो रही है।

मैक्समूलर ने भी इस जाति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। प्रिय भाइयो ! यदि आपको यह अभिमान है कि हमारे प्राचीन लोग बड़े शूरवीर हुए तो महर्षि की शताब्दी को याद करो। आज आप का मुख मलीन और तन क्षीण हो रहा है। आप लोगों का जगह-जगह पर धर्म नष्ट किया जा रहा है, आज हमने अपना राज्य खोया, अपना गौरव खोया । अब उस वैदिक धर्म की ज्योति को जगा दो। वैदिक उपदेश को मान लो, और आपस में प्रेम बढ़ाओ। हम दयानन्द जन्म शताब्दी के उपलक्ष में धन नहीं मांगते। केवल प्रार्थना यही है कि इस वैदिक धर्म की ज्योत्ति को जगाने की आप लोग चेष्टा करें। यह न समझ लें कि वकालत करके समय मिलेगा तो आर्यसमाज की सेवा करेंगे। ऋषि का उपदेश है कि जो कुछ हो भगवान् को अर्पण करो।

एक समय भगवान् बुद्ध ने एक भिक्षु को एक राजा के पास भेजा। राजा ने बहुत धन दिया, परन्तु भिक्षु ने कहा कि ''मैं इसका इच्छुक नहीं हूँ।'' राजा के यहां उसने अन्न भी ग्रहण नहीं किया, और बिना भिक्षा के चल दिया। एक बुढ़िया के फटे कपड़े को लेकर उसे हृदय से लगाया और बुद्ध जी के अर्पण कर दिया क्योंकि वह वस्त्र बुढ़िया का सर्वस्व था।

अतएव आप भी धर्म को (Surplus) उपयोग से अधिक न समझें । उत्तम से उत्तम वस्तु को धर्म के लिये देने को तैयार रहो। तब ही आपके धर्म की उन्नति होगी।

प्यारे भाइयो । मैं आपसे पूछता हूँ कि महाराज अश्वकेतु ने देश से क्या कहा था ? 'ऐसा राज्य स्थापित करो, स्वराज्य का ऐसा सरल मार्ग बनाओ कि इस संसार में कोई चोर न रहे, कोई दुर्बल न रहे, कोई ऐसा आदमी न रहे, जो अग्निहोत्री न हो।'' उस वैदिक समय को लाने के लिये आज से हम कटिबद्ध हो जाये। यदि आप महर्षि की शताब्दी को सफल बनाना चाहते हैं तो अपने ''आत्म-बलिदान'' से उस महर्षि के सन्देश (Message) को पूरा करें।

बोलो महर्षि दयानन्द की जय !

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

४५-जिस को चाहे नीति देता है।। -म० ११ सि० ३। सू० २। आ० २६१।।

(समीक्षक) जब जिस को चाहता है उस को नीति देता है तो जिस को नहीं चाहत्ता है उस को अनीति देता होगा। यह बात ईश्वरता की नहीं किन्तु जो पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है, अन्य नहीं।। ४५।।

४६-जो लोग ब्याज खाते हैं वे कबरों से नहीं खड़े होंगे।। -मं० १। सि० ३० सू० २। आ० २७५॥

(समीक्षक) क्या वे कबरों में ही पड़े रहेंगे और जो पड़े रहेंगे तो कब तक? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है।। ४६ ।।

४७-वह कि जिस को चाहेगा क्षमा करेगा जिस को चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है।। -म० १। सि० ३। सू० २। आ० २६९।।

(समीक्षक) क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगण्ड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिस को चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये और जब ईश्वर ने उस को वैसा ही किया तो जीव को दुःख-सुख भी होना न चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उस का फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं।।४७।।

४८-कह इस से अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिन में नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उन को देखने वाला है साथ बन्दों के।। -म० १। सि० ३० सू० ३। आ० १५।।

(समीक्षक) भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन ? इस को ईश्वर कहना वा स्त्रैण ? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिस में हो उस को परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है। जो बीवियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहाँ गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं। यदि यहां जन्म पाकर वहाँ गई हैं और जो कयामत को रात से पहिले ही वहीं बीबियों को बुला लिया तो उन के खाविन्दों को क्यों न बुला लिया। और कयामत की रात में सब का न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा। यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं। जो उन के लिये पुरुष भी है तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीवियां कहां से देगा? और जैसे बीवियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाई वैसे पुरुषों को वहाँ सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया। इसलिये मुसलमानों का खुदा अन्यायकारी, वे समझ है॥ ४८॥

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

११ सितम्बर, १८८२, तदनुसार भादों बदी चौदश, संवत् १९३९, सोमवार

प्रश्न मौ.- हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचारों पर और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन-सी पुस्तक पूर्ण है सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है वा नहीं ?

उत्तर- स्वामी-हां है।

प्रश्न- मौ. - आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती उसके अन्तर्गत समस्त भाषाएं कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर स्वा.-जो किसी देश विशेष की भाषा होती है वह किसी दूसरी देश भाषा में व्यापक नहीं हो सकती क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

प्रश्न- मौ. जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती तो जब वह किसी देश की है ही नहीं तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है ?

उत्तर- स्वा.-जो एक देश की भाषा है उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

प्रश्न- मौ.- यह भाषा किसकी है ? उत्तर स्वा०-विद्या की । प्रश्न मौ०- बोलने वाला इसका कौन है ? उत्तर स्वा०- इसका बोलने वाला सर्वदेशी है। मौलवी-तो वह कौन है ? स्वामी- वह परब्रह्म है। मौलवी-यह किसको सम्बोधन की गई है?

स्वामी- आदि सृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त करके दूसरों को सुनाया ।

मौलवी-इन चारों को ही विशेषरूप से क्यों सुनाया ? स्वामी-वे चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे । मौलवी-क्या इस बोली को वे जानते थे ?

स्वामी-उस जानने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उनको भाषा का ज्ञान दे दिया ।

मौलवी-इसको आप किन युक्तियों से सिद्ध करते हैं ?

स्वामी-विना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता ।

मौलवी-विना कारण के कार्य होता है या नहीं ?

स्वामी-नहीं ।

मौलवी-इस बात की क्या साक्षी है ?

स्वामी-ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है और उनके ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

मौलवी-यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धिविरुद्ध है। कारण कथन कीजिये।

स्वामी- वेद की सांक्षी स्वयं वेद से प्रकट है।

मौलवी- इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं।

स्वामी-ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं है और न वे सिद्ध कर सकते हैं।

मौलवी-पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं।

स्वामी-पहले ही कह चुका हूं कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते (और यदि कर सकते हैं तो बताइये कि मौहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुंचा) ।

मौलवी- जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया ।

(नोट-खेद है कि मौलवी साहब ने विना सोचे समझे ऐसा कह दिया । यह किसी प्रकार ठीक नहीं। न तो कुरान आदि सृष्टि में मौहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियाँ ही ऐसी हैं जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों और न उसकी भाषा ही ऐसी है। मौहम्मद साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं जिनसे कोई मौहम्मदी भाई इंकार नहीं कर सकता। इसलिये कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है।)

महर्षि का मन्तव्य

-डॉ. रविदत्त आचार्य

महर्षि दयानन्द विकासवादी विचारधारा वाले संन्यासी थे। मोक्ष प्राप्ति की अपेक्षा उन्हें मानवसुधार अधिक प्रिय था। सर्वांगीण उन्नति की दृष्टि से उन्होंने एक आन्दोलन छेड़ा और उस पवित्र यज्ञ की आहुति में अपना सर्वस्व अर्पित किया। उनका मानना था कि मनुष्य को पहले ईश्वर का, पश्चात् धर्म का ज्ञान होना चाहिए। बिना ईश्वर और धर्म को जाने मनुष्य अपने कर्तव्य को ठीक से नहीं समझ पाएगा। मानव जीवन की सार्थकता ईश्वरीय ज्ञान से हैं। तत्कालीन अन्धविश्वास उन्हें बहुत खटकता था, इसी कारण उस समय फैली कुरीतियों व रूढ़ियों को जड़ से उखाड़ने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने अपने को एक. आदर्श समाज सुधारक एवं मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत किया, महत्वकांक्षा का कहीं भी स्पर्श प्रतीत नहीं होता। उनका समग्र जीवन वैदिक सिद्धांतों के परिपालन का एक नमूना हैं। सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका की निम्न लिखित पंक्तियां अवलोकनीय हैं-

''जैसा मै पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाइबल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रस्तुत हूं वैसा सबको करना योग्य हैं।'' मानव के विकास में बाधक तत्वों को खुल्लमखुल्ला संसार के सामने लाकर रख दिया। सत्यार्थ प्रकाश को अच्छी तरह पढ़ने के पश्चात् पाठक एक सक्षण सुधारक बन सकता है। समाज में फैले हुए रोगों का लक्षण उपचार तथा बचाव भली भांति स्पष्ट कर दिया हैं। अवसरवादी ठग जनसाधारण को जिस गति से पथभ्रष्ट कर रहे थे, उनसे भी सतर्क कर दिया। बिना शिक्षा प्राप्ति किए सबके गुरु बनकर सम्मोहन व उच्चाटन आदि दुष्कर्मों में उलझें हुए थे। द्वितीय समुल्लास में इस ओर संकेत कर दिया है उसे पढ़कर पाखंडियों व ढोंगियों को सरलता से परास्त कर सकते हैं। यदि हम वास्तविक रूप में आर्य हैं तो पाठ तक ही सीमित क्यों रह जाते हैं। पाखण्डी को पराभूत करना आर्य का कर्तव्य है। मात्र पढ़ने से बुराई को समाप्त नहीं किया जा सकता, कुछ क्रियात्मक कदम उठाना ही पड़ेगा। ऋषि के उद्गारों को यदि रचनात्मक रूप नहीं देते तो हम ऋषि ऋण से उऋण नहीं होंगे यदि कुरीतियों का समर्थन करते रहे तो ऋषि के ग्रंथों को पढ़कर भी हम समाज की काया पलट नहीं कर पाएंगे। जिस वस्ती में हम रहते हैं यदि उसमें हम आंखे वन्द कर लें तो आर्यत्व कितने प्रतिशत रह जाएगा, आर्यजन स्वयं ही आंकलन कर लें । ऋषि ने हमको निर्देश किया है कि जहां भी कूड़ा देखो वहीं झाडू लगाओ। सत्यार्थ प्रकाश का पाठक अपने आपको एक कुशल एवं सक्षण उपदेशक समझे तो ऋषि के मन्तव्यों की परम्परा कायम रह सकती है और यदि आर्य बन्धु इस दायित्य को स्वीकार कर लें तो सुधार होकर रहेगा । इस सम्वन्ध में कभी भी नकारात्मक चिन्तन न करें, हम सुधारक हैं सुधार की व्यवस्था करें।

यदि हम एक दूसरे की ओर देखते रहेंगे तो पाखण्ड का बोलबाला रहेगा। भले ही हम कोठरी में बैठकर महर्षि दयानन्द की जय बोलते रहें। उत्सवों में नारों की भरमार होती है। परन्तु क्या रचनात्मक कदम भी कोई उठाता है। जनता बराबर ठगी जा रही है और आर्यजन केवल नारों से ही अपने आपको कृतकृत्य मान लेते हैं। वर्ष भर में हम यदि एक परिवार को भी आर्य बना लेते हैं तो यह उद्घोष एवं जयघोष से कही बढ़कर हैं। सुधार व्यक्ति का करना हैं और व्यक्ति पर कुछ प्रयोग किए बिना परिवर्तन असंभव हैं। नारे उतेजक होते हैं सुधारक नहीं ।

प्रत्येक आर्य की एक प्रयोगशाला होनी चाहिए साथ ही उसका कुछ कार्यक्षेक्ष भी निर्धारित हो, फिर सैद्धांतिक कार्यक्रमों का संचालन नियमित रूप से किया जाए तो एक दिन निश्चय ही सफलता मिलेगी। आज दुर्व्यसनों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। मनुष्य जाति का दुर्व्यसनों से बचना आवश्यक हैं। परिवारों में सिद्धान्तों का प्रचलन जारी करने के लिए अनेक विध उपाय करने होंगे। स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न करने के लिए आर्षग्रंथो कों पहुंचना और परिवारों में बार बार जाकर वैसी ही बार्ता करना, पढ़कर सुनाना तथा स्वाध्याय का लाभ बताना होगा । ऋषि वेदज्ञान के शिक्षक थे, हमें भी शिक्षक बनना होगा । सत्संगो में आर्षग्रंथो की चर्चा व प्रेरणा अवश्य करनी चाहिए। ऋषि के प्रवचन व शास्त्रार्थ बहुत महत्वपूर्ण है। उनके विचारों को पढ़कर हम सभी प्रकारकी शंकाओ का समाधान कर सकते हैं। विशेष बात यह है कि बार बारपाठ करने से ही सिद्धान्त की जानकारी होती है। सरसरी निगाह से देखने पर कुछ पता नहीं लगता । सत्यार्थ प्रकाश व संस्कार विधि को ही लें तो अनेक बार गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना होगा, अन्यथा कमजोरी ही बनी रहेगी, जैसे एक छात्र किसी विषय को ध्यान से नहीं पढ़ता तो यह विषय उसके लिए दुरुह बना रहता है। कठिन और सरल कुछ नहीं होता, यह हमारे अध्यवसाय परं निर्भर हैं। सिद्धान्त को विना समझे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। यदि हम ऋषि के प्रति अपना कुछ कर्तव्य समझते हैं तो हमें अपना कुछ समय ऋषिकृत ग्रंथों के स्वाध्याय में लगाना ही होगा। स्वाध्याय के लिए हम किन ग्रंथों का चयन करें, सत्यार्थ प्रकाश का तृतीय समुल्लास देखें ।

गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए आध्यात्मिक क्रियाएं अनिवार्य हैं। प्राणायाम ध्यानादि करने से ही आध्यात्मिक रहस्य खुलते हैं। ऋषि ने आत्मशक्ति को ध्यानयोग से पुष्ट किया था। सत्यार्थ प्रकाश के ११-१२-१३-१४ समुल्लासों में स्वार्थीजनों का आरोप हैं कि दूसरे मतों की त्रुटियाक्यों उजागर की गई ? यह केवल आरोप हैं। इस सम्वन्ध में ऋषि हृदय के उद्गारों को जानलेना जरूरी हैं। उत्तरार्द्ध अनुभूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा-

''जब तक इस मनुष्यजाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वतजन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं हैं।''

मत ग्रन्थों के चलानेवालों ने अपने स्वार्थ व प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए असत्य का सहारा लिया तथा जनसाधारण के प्रयोजन को सर्वधा नकार दिया। ऐसे मिथ्यावादी लोग अपने अनुयायियों को इतना पंगु बना देते हैं कि बिना गुरु के एक पग भी न चल सकें। दूसरा कमाल उन्होंने यह किया हैं-कि उनके रहते ईश्वर की कोई जरूरत नहीं। मोहम्मद-ईसा-साई स्वामी नारायण आदि ने स्वयं ईश्वर का पद लिया हुआ था, किन्तु महर्षि ने अपने आप को ईश्वर का उपासक बनाकर सबको ईश्वर को जानने तथा मानने की प्रेरणा दी और ईश्वर को सर्वशक्तिमान सिद्ध किया। सबके प्रयोजन को सिद्ध करने वाले सिद्धांतो का प्रचार किया। गुरु शिष्यों में समता स्थापित की। गुरु की महता इसी में थी कि वह शिष्यों को वेदशास्त्रों का ज्ञान देवे और यथार्थ को स्पष्ट करें। वेदज्ञान के बिना यदि गुरू भी भटका हुआ हैं तो शिष्यों का कैसे यथार्थ ज्ञान कराएगा ? ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में इस ओर संकेत किया हैं-

''सम्पूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को बिना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए सब मनुष्य को वेदादि शास्त्र अर्थज्ञान सहित अवश्य पड़ने चाहिए।'' (ऋ. भा. भू. पठनपाठन विषय)

तथ्यों को ठीक प्रकार से समझाने के लिए सब विद्याओं के मूल वेद का ही सहारा लेना पड़ेगा। ईश्वर तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप का वेदाध्ययन से ही पता चलेगा। वेद का मंत्र स्पष्ट कर देता है कि ईश्वर जीव प्रकृति ये तीन अनादि है। पक्षियों एवं वृक्ष के उदाहरण से इसे समझाया गया है। एक पेड़ पर दो पक्षी बैठे हुए हैं एक पक्षी वृक्ष के स्वादु फलों को खा रहा हैं, दूसरा केवल देख रहा है। जीवात्मा परमात्मा दो पक्षी हैं पेड़ प्रकृति है। जीव प्रकृति का उपभोग करता हैं, ईश्वर द्रष्टा है।

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्लं स्वाद्वत्तयनश्न त्रन्यो अभिचाक रीति ।। अष्टम समुल्लास में सृष्टि उत्पति व प्रलय को समझाते हुए ऋषि **ने उक्त मन्त्र को उद्धत किया है। यह त्रैतवाद का सिद्धान्त उन्होंने वेदों से खोजकर सबके सामने रख दिया। अभी तक इतनी भ्रांति फैली हुई हैं कि लोग ईश्वर को ही जगत का उपादान कारण मानते हैं। त्रैतवाद को न मानने पर भ्रांति ही बनी रहेगी। इसी मान्यता के आधार पर मनुष्यों के कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। प्रकृति का उपभोग किया जाता है तथा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की जाती है। आर्य समाज के दूसरे नियम में इसे स्पष्ट कर दिया गया है। तीसरे नियम में बताया गया है कि वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। वेद का स्वाध्याय, अनुशीलन तथा प्रचार ही परम धर्म है। अब कोई सन्देह नहीं रह जाता कि मनुष्य का धर्म क्या है। वेदानुकूल आचरण व व्यवहार करना ही धर्म है।**

यदि किसी को मोक्ष के विषय में जानना हो तो सत्यार्थ प्रकाश का नवम समुल्लास अवलोकनीय है। इस सम्बन्ध में बताया गया है कि योग साधना से ही मोक्ष संभव है चित्तवृत्तियों का निरोध करने पर ही आत्मा के वास्तविक स्वरूप का पता चलता है। मोक्ष प्राप्ति को सबसे बड़ा पुरुषार्थ स्वीकार किया है। सांख्यवर्शन को सूत्र उद्धृत करते हुए इसी विषय को स्पष्ट किया गया है-

''त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः'' त्रिविध दुखों से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना ही पुरुषार्थ की पराकाष्ठा है।

अन्त में मैं इतना कहना चाहूंगा किसी भी विषय को समझने के लिए सत्यार्थ प्रकाश प्रथम गाइड है, ऋषि के मन्तव्यों को समझने के लिए सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश को गम्भीरतापूर्वक पढ़ें, फिर अपने आप मार्ग निकलता चला जाएगा। यही आर्य जीवन की सफलता है। अपने जीवन को मनमाने ढंग से न चलाकर ऋषियों के सिद्धान्तों का अवलम्बन करें। ऋषि का यही मन्तव्य है कि हम आर्षपद्धति से जीवनयापन करें।

सुप्रीम कोर्ट के जज ने कहा मनु की प्राचीन न्याय प्रणाली भारत के लिए बेहतर

क्या भारत में अब सेकडों साल पुरानी और मिथकीय न्याय प्रणाली लागु की जाएगी? क्या अब मनु, चाणक्य व याज्ञवल्क के रास्ते पर चल कर न्याय दिया जाएगा? क्या नारद व ब्रहस्पति जैसे मिथकीय चरित्रों के वताए राह पर चलकर न्यायालय अपने फैशले देंगे ? यह बात काल्पनिक भले लगे, पर सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस एस. अब्दुल नजीर का तो यही मानना है। उन्होंने रविवार के अखिल भारतीय अधिवक्ता महासंघ के अखील भारतीय अधिवक्ता महासंघ के राष्ट्रीय परिषद् के एक कार्यक्रम में कहा कि कानून के छात्रों को औपनिवेशिक मानसिकता से वाहर निकलने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें मनु, चाणाक्य व ब्रहस्पती की लिखी हुई न्याय प्रणाली के बारे में पढाया जाए। उन्होंने मौजुदा न्याय प्रणाली के बारे में कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं कि औपनिवेशक न्याय प्रणाली भारत की जनता के लिए उपयुक्त नहीं है। समय की जरूरत है कि न्याय व्यवस्था का भारतीयकरण किया जाए। 'प्राचीन न्याय प्रणाली':-

उन्होंने न्याय प्रणाली के बारे में कहा, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि औपनिवेशक न्याय व्यवस्था भारत के लिए उपयुक्त नहीं है। जस्टीस नजीर ने कहा, हालांकी यह बड़ा काम है और इसमें बहुत समय लगेगा, पर भारतीय समाज, विरासत और संस्कृति के अनुरूप न्याय व्यवस्था को ढालने के लिए यह काम लिया जाना चाहिए। जस्टीस नजीर ने कहा कि भारतीय न्याय व्यवस्था से औपनिवेशक व गुलामी मानसिकता दूर करना जरूरी है और इसके लिए यह जरूरी है कि कानून के छात्रों को प्राचीन न्याय प्रणाली के, बारे में जानकारी दी जाए ।

सुप्रीम कोर्ट के इस जज ने कहा कि भारत में कानून का राज और संसदीय लोकतंत्र इस पर निर्भर करता है कि भविष्य के वकीलों और जजों में ज्ञान, योग्यता और देशभक्ति कितनी है। उन्होंने इसके आगे कहा कि इस तरह के वकील और जज भारतीय समाज की पृष्ठ भूमि से ही निकलेंगे। जस्टीस नजीर ने कहा महान वकील और जज जन्मजात नहीं होते, उन्हें सही शिक्षा और मनु कौटिल्य, कात्यायन, नारद, याज्ञवाल्क व ब्रहस्पति से जैसे अतीत के महान न्यायविदों की न्याय प्रणाली की शिक्षा देकर तैयार किया जा सकता है।

औपनिवेशक न्याय प्रणाली-

उन्होंने कहा कि महान न्याय प्रणाली की लगातार उपेक्षा और विदेशी व औपनिवेशक न्याय प्रणाली से चिपके रहना राष्ट्रिय हितों और संविधान के उद्देश्यों के लिए घातक है। उन्होंने कहा कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में न्याय मांगने की बात निहित थी। लेकिन इसके उलट ब्रिटिश न्याय व्यवस्था में न्याय की गुहार की जाती है और जजों को लार्डशिप या लेडीशिप कहा जाता है। सुप्रीम के इस जज ने कहा कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में विवाह एक सामाजिक दायित्व है, जिसका निर्वाह हर किसी को करना है। लेकिन पाश्चात्य न्याय प्रणाली में विवाह एक ऐसी साझेदारी बना दिया गया है जिसमें हर कोई जितना वसूल सकता है, वसूलने की कोशिश करता है। जस्टीस नजीर ने कहा कि अधुनिक समय में तलाक इसलिए यढ रहे कि विवाह में कर्तव्य की पुरी उपेक्षा की जा रही है, जबकि अर्थ शास्त्र के अनुशासन पर्व में एक बार भी अधिकार की बात नहीं की गई है।

साभार-आर्य जीवन जनवरी, २०२२

●●●

फलित ज्योतिष की अमान्य मान्यताओं से मानव जगत् से सबसे बड़ा भ्रामिक वैचारिक शोषण

–पण्डित उम्मेद सिंह विशारद

उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे महान् समाजिक सुधारक आर्ष और अनार्ष मान्यताओं का रहस्य बताने वाले युगपुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास के प्रश्नोत्तर में लिखते हैं।

प्रश्न- तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

उत्तर- नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

फलित ज्योतिष के द्वारा अवैदिक व सृष्टिक्रम विज्ञान के अमान्य अनार्ष मान्यताओं को चतुर लोगों द्वारा भारत की जनता का वैचारिक शोषण करके अपना मनोरथ तो पूर्ण किया ही है, अपितु भारत वर्ष को गुलामी के दलदल में धकेलने का भी कार्य किया है। बड़े अफसोस के साथ लिखना पड़ रहा है कि यह पाखण्ड इस वैज्ञानिक युग में भी दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। स्वार्थी और चतुर किन्तु ज्ञान विज्ञान से शून्य लोग भोली-भाली जनता को फलित ज्योतिष की आड़ में कई प्रकार से लूट रहे हैं।

इस माह का लेख फलित ज्योतिष पर लिखने का मन बना इसलिए प्रस्तुत लेख में क्लेवर क्षमता के अनुसार कई उदाहरण सहित लिखा जा रहा है। विस्तार आप स्वयं करके आगे भी प्रेषित करने की कृपा करें।

फलित ज्योतिष का पाखण्ड

कृतं मेदक्षिणे हस्ते जयोमेसव्य आहितः (अथर्व.)

ईश्वरीय व्यवस्था में मानव कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है और कर्मानुसार फल प्राप्ति ईश्वरीय व्यवस्था में होती है। मानव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल उसका ईश्वर द्वारा दिया जाता है। अतः मनुष्यों को अपने दिल में भरोसा रखना चाहिए कि यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो सफलता मेरे बायें हाथ में है। अतः संसार में जितने भी कार्य सिद्ध होते हैं वह पुरुषार्थ से होते हैं। मनुष्य के जीवन में अगले क्षण क्या होने वाला है वह नहीं जानता है। ज्योतिषों द्वारा फलित आश्वासन भ्रामिक हैं, यह केवल मनुष्य को गुमराह करने वाला है।

उदाहरण १- भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाले लुटेरे बाबर की जीवन की एक घटना है। जब वह भारत पर आक्रमण करने आया तो भारत के प्रसिद्ध भविष्य बताने वाले ज्योतिष ने बाबर से कहा कि अभी आप भारत पर आक्रमण न करें, इससे आपको सफलता नहीं मिलेगी। बाबर ने पूछा आपको यह जानकारी कैसे मिली। ज्योतिष ने कहा हमारे फलित ज्योतिष शास्त्र में लिखा है। बाबर ने कुछ सोचकर कहा ज्योतिष जी आप यह भी जानते होंगे कि आप और कितने वर्ष जिन्दा रहोगे, ज्योतिष ने कहा अभी मैं ३७ वर्ष और जिन्दा रहूंगा, बाबर ने म्यान से तलवार निकाली और एक ही झटके में ज्योतिषी का सिर धड़ से अलग कर दिया और कहा कि जिसको अपने अगले क्षण का पता नहीं ऐसे पाखण्डी पर क्या विश्वास किया जा सकता है और उस ऐतिहासिक युद्ध में बाबर की विजय हुई और ज्योतिष की बात मिथ्या हुई।

उदाहरण २- आप कल्पना करो कि मेरे सामने एक भोजन का थाल पड़ा है और उसमें दस कटोरियां हैं अलग-अलग व्यंजनों की है। पहले मैं कौनसी कटोरी का पदार्थ खाऊंगा ज्योतिष तो क्या स्वयं ईश्वर भी नहीं बता सकते हैं पहले मैं कौनसी चीज खाऊंगा क्योंकि कर्म करना मेरे स्वतन्त्रता के अधिकार में है।

उदाहरण ३- एक ब्राह्मण काशी में दस वर्ष ज्योतिष विद्या पढ़ के अपने गांव में आया गांव का एक उलट जाट लाठी लिये अपने खेत में जा रहा था, नमस्ते पश्चात् जाट ने पूछा आप कहां से आ रहे हैं, ब्राह्मण बोला मैं दस वर्ष काशी से ज्योतिष विद्या पढ़ के आ रहा हूं। जाट ने पूछा महाराज ज्योतिष क्या होता है। ब्राह्मण ने बताया हम अगले क्षण आने वाली बातों को पहले बता देते हैं। जाट ने पूछा महाराज मैं पूछूं तो आप बतायेंगे, क्यों नहींअवश्य पूछिये। ब्राह्मण बोला मैं उच्च कोटि का भविष्यवक्ता बन गया हूं। अब जाट ने कन्धे से लाठी उठाकर घुमाकर पूछा बता मैं तेरे इस लाठी को कहां मारूंगा। यह सुनकर ब्राह्मण नीचे ऊपर देखने लगा, यदि मैंने कहा कि सिर पर मारेगा तो वह पैरों पर ठोकेगा यदि पैरों पर कहा तो यह सिर पर ठोकेगा। ब्राह्मण सिर झुकाकर नीचे देखने लगा। इसलिए फलित ज्योतिष पाखण्ड है।

नवग्रहों को मानव पर लगाने का भ्रम

प्रश्न (सत्यार्थप्रकाश)- जब किसी गृहस्थ ज्योतिर्विदाभास के पास जाके कहते हैं कि महाराज इसको क्या है? तब वह कहते हैं इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाए, नहीं तो बहुत पीड़ित और मर जाये तो भी आश्चर्य नहीं है।

उत्तर- कहिए ज्योतिर्विद्! जैसी यह पृथ्वी जड़ है, वैसे ही सूर्य आदि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ नहीं कर सकते। क्या ये चेतन है, जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होकर सुख दे सकें। भोली-भाली जनता को ठगने के लिये ग्रहों का प्रकोप का डर उनके दिलों में बिठा रखा है। प्रत्येक ग्रह जड़ हैं और पृथ्वी से लाखों गुना बड़े हैं फिर वह एक छोटे से मनुष्य पर कैसे चढ़ सकते हैं।

उदाहरण- दो नवयुवक एक बलिष्ठ शरीर बालक और दूसरा मरियल-सा कमजोर शरीर वाले ज्योतिष के पास जाकर पूछने लगे, महाराज हम पर कौन से ग्रह चढ़े हैं, जो हमारे कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होते। ज्योतिष ने बलिष्ठ शरीर वाले युवक से कहा तुम पर सूर्य ग्रह मेहरबान है, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा और दूसरे कमजोर शरीर वाले युवक से कहा कि तुम पर सूर्य ग्रह चढ़े हैं, तुम्हारा यह अनिष्ट करेंगे, जल्दी पूजा-पाठ, दान करो हम सूर्य ग्रह को शान्त कर देंगे।

यह सब कौतूहल एक विद्वान् युवक देख रहा था, उससे रहा नहीं गया वह चुप भी कैसे रह सकता था ऋषि दयानन्द का भक्त जो था। उसने ज्योतिषी से कहा मैं अभी इन दोनों की परीक्षा ले सकता हूं क्या? ज्योतिषी जी ने अहंकार में कहा अवश्य-अवश्य हमारा कथन कभी गलत नहीं होता है, अस्तु! जून का महीना था, दोपहर का समय था, विद्वान् युवक ने दोनों पीड़ित युवकों से कहा मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा दोनों के कपड़े उतरवाये और नंगे पैर दोनों को पक्के फर्श पर खड़ा कर दिया और आधा घण्टा खड़े रहने को कहा। किन्तु यह क्या जो बलिष्ठ शरीर वाला युवक था जिस पर सूर्य ग्रह मेहरबान था वह चक्कर खाकर गिर गया और कमजोर शरीर वाला किन्तु दृढ़ इच्छा वाला वह युवक जिस पर सूर्य ग्रह कुपित थे ज्यों का त्यों खड़ा रहा। अब आर्य युवक ज्योतिष से कहने लगा कहिए महाराज प्रत्यक्ष में आपकी भविष्यवाणी असफल क्यों हुई। वास्तव में सूर्य ग्रह जड़ है और ताप से अधिक कुछ नहीं दे सकता है। सूर्य की गरमी का प्रभाव दोनों पर बराबर पड़ा किन्तु सहन क्षमता में दोनों अलग-अलग थे। इसलिए नवग्रहों का ज्योतिष भ्रम है, धोखा है।

शनिग्रह- शनिग्रह पृथ्वी से लाखों मील दूर है और कई लाख गुना बड़ा है- बताइए ज्योतिष महाराज वह शनिग्रह एक छोटे से आदमी पर कैसे लग सकता है, शनि ग्रह के लगने से तो सारी पृथ्वी ही दब जायेगी। वास्तव में ईश्वरीय व्यवस्था में प्रत्येक ग्रह जड़ हैं और अपनी-अपनी धुरी पर केन्द्रित हैं। इस सृष्टिक्रम की व्यवस्था को बनाए रखते हैं। यह मानव जगत् का उपकार ही करते हैं, किन्तु अपकार कभी नहीं करते हैं।

उदाहरण- आश्चर्य होता है शनिवार को कुछ लोगों का धन्धा खूब चलता है। वह एक बाल्टी में तेल लेकर जगह-जगह चौराहों पर घरों में शनि के नाम से लोगों को ठगते रहते हैं और अन्धविश्वासी लोग उनकी बाल्टी को सिक्कों से भर देते हैं। क्या शनिदेव मांगने वाले लोगों पर मेहरबान होते हैं। नहीं, यह उनका धन हरण का मार्ग है और अधिक आश्चर्य होता है अब शनि को देवता बनाकर उनकी मूर्ति भी बना दी गई है और मन्दिर भी बना दिया गया है। ईश्वर भारतवासियों को सुमति दें।

परिवारों के प्रत्येक शुभकार्यों में शुभदिन मुहूर्त निकालना भी भ्रम है- वास्तव में पृथ्वी पर सब दिन बराबर होते हैं और एक जैसे होते हैं। ऋतुओं के अनुसार व जलवायु के अनुसार अपना प्रभाव दिखाते हैं। वैसे प्रत्येक शुभकार्य करने के लिये प्रत्येक दिन शुभ होता है किन्तु आप अपना शुभकार्य तब करें जब ऋतु अनुकूल हो, स्वास्थ्य अनुकूल हो, परिवार सुख-शान्ति में हो, वह दिन किसी भी समय शुभकार्य के लिए शुभ होता है।

एक ज्वलन्त उदाहरण- श्री रामचन्द्र जी कोई साधारण पुरुष न थे वह मर्यादा पुरुषोत्तम थे और उनके कुलगुरु वशिष्ठ भी ऋषि ब्रह्मा के पुत्र थे, श्रीराम को गद्दी पर बैठाने का मुहूर्त वशिष्ठ ऋषि ने निकाला था। इसी मुहूर्त में श्रीराम को चौदह वर्ष के लिये वनवास जाना पड़ा था। पीछे श्रीराम के पिता दशरथ को पुत्र वियोग में मृत्यु हो गई। तीनों रानियां विधवा हो गयीं, आगे चलकर सीता का हरण हुआ, वशिष्ठ की शुभ मुहूर्त शुभकार्य हेतु व्यर्थ गया। इस ऐतिहासिक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि शुभ व अशुभ मुहूर्त ज्योतिष का चलन भी भ्रामिक है।

गणित ज्योतिष अन्त में- वेदों की शिक्षा के आधार पर गणित ज्योतिष सत्य है, गणित ज्योतिष द्वारा हम सौ वर्ष पहले बता सकते हैं कि क्या होगा। जैसे कि तिथियों का हिसाब, दिनों का हिसाब, ऋतुओं का परिवर्तन, सूर्य व चन्द्रग्रहण। चूंकि यह सारी चीजें चांद, सूर्य और जमीन इन तीनों को नियमानुसार गति पर निर्भर है, जिसमें एक पल का भी अन्तर नहीं आता। अतः हम सौ साल पहले बतला सकते हैं कि अमुक तिथि, अमुक वार को अमुक ऋतु में और अमुक समय में सूर्य व चन्द्रग्रहण होगा तथा कारण को देखकर कार्य का अनुमान अर्थात् कारण को देखकर होने वाले काम का अनुमान आदि।

आर्यसमाज के चौथे नियम में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं कि- सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

●●●

यज्ञ (हवन) करने की सटीक और सही विधि

-डॉ० विवेक आर्य

हमारे बहुत से आर्य समाज के मित्र या अन्य सनातनी भी बहुत सा यज्ञ करते और करवाते हैं परन्तु यज्ञ का पूरा लाभ जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है वैसा लाभ नहीं उठा पाते हैं । इसका कारण है कि बहुत से प्रकार की भिन्न भिन्न यज्ञ पद्धतियों का प्रचलित होना । प्रत्येक आर्य समाज में या गायत्री संस्थानों में या अन्य सनातनी मंदिरों, मठों में यज्ञ करने की प्रक्रिया अलग अलग है । अधिकतर तो आर्य समाज के विद्वानों से यज्ञ की महिमा सुनकर अनेकों परिवार चाव में आकर अपने घरों में यज्ञ तो शुरु कर देते हैं परन्तु फिर कहते हैं "हमने तो पूरा एक वर्ष यज्ञ किया परन्तु हमें तो कोई लाभ नहीं हुआ" इसका कारण गलत प्रकार से यज्ञ करना है। ठीक विधि से यज्ञ न करने से लाभ के बजाए हानी होने की संभावना भी है । तो सही और गलत विधि क्या है इसपर नीचे के बिन्दुओ में विस्तार से लिखा जाता है :-

(१) सबसे पहले तो यज्ञ कुंड उसी आकार और परिमाण का होना चाहिए जैसी की शास्त्रों में बताया गया है । यानी कि ऊपर का चौकोर (Square) नीचे के चौकोर से चार गुना चौड़ा होना चाहिए । उदाहरण :- जैसे कि ऊपर का चौकोर यदि १६, १६ है तो नीचे का ४" • ४" होना चाहिए और ये यज्ञ कुंड उतना ही गहरा यानी कि १६" होना चाहिए। यज्ञकुंड के इस आकार को गणित में Frustrum Square Pyramid भी कहा जाता है । इससे अलग परिमाण में बना हुआ यज्ञकुंड सही नहीं माना जाता ।

(२) यज्ञकुंड सबसे सर्वोत्तम तो मिट्टी का ही माना गया है जिसकी लिपाई देसी गाँय के गोबर से होती रहे । क्योंकि इस यज्ञकुंड में किए गए यज्ञ से चारों ओर सुगँध का प्रभाव अति तीव्र होता है जो कि अन्य धातु निर्मित यज्ञकुंड से नहीं होता। यद्यपि धातु के यज्ञकुंड का निर्माण भी किया जा सकता है जो कि बाजार में मिलते हैं । धातु के यज्ञकुंड में चीकनी मिट्टी पोत लेनी चाहिए जिससे कि उससे वही सारे लाभ मिलें जो कि मिट्टी के यज्ञकुंड से मिलते हैं ।

(३) यज्ञकुंड का निर्माण भी यज्ञ के प्रकारों के अनुसार ही करना चाहिए । जैसे अकेले दैनिक यज्ञ करने के लिये छोटा यज्ञकुंड, घर के सदस्यों के साथ करने के लिये थोड़ा बड़े आकार का और बहुत बड़े यज्ञ जैसे कि चतुर्वेद परायण यज्ञ आदि के करने के लिये बड़े यज्ञकुंडों का निर्माण आवश्यक्ता के अनुसार करवा लेना चाहिए। यज्ञकुंड के आकार के अनुसार ही उसमें ईंधन का व्यय होता है ।

(४) यज्ञकुंड के आकार के अनुसार ही समिधाओं (हवन की लकड़ियों) का चयन करना चाहिए। यदि छोटा यज्ञ करना हो तो छोटी समिधाएँ पर्याप्त हैं । अधिक मात्रा में ली गईं या बड़ी समिधाओं से घृत का व्यय अधिक होता है । और समिधाएँ भी ऋतु अनुकूल ही लेनी चाहिएँ । जैसे कि यज्ञ करने के लिये आम, ढाक, पीपल, बड़, चन्दन, बेरी, नीम आदि की समिधाएँ सबसे उत्तम मानी गई हैं । यदी समिधाएँ बहुत मोटी या बड़ी हैं तो उनको आरी से काटकर पतला या छोटा कर लेना चाहिए जिससे की घृत का अधिक व्यय न हो । और देखना चाहिए कि समिधाओं में किसी प्रकार की दीमक न हो या कोई गंदगी न लगी हो यज्ञ करने से पहले प्रयोग होने वाली इन समिधाओं को शुद्ध और साफ कर लेना चाहिए ।

(५) ये देखा गया है बहुत से लोग बाजार में मिलने वाले मिलावटी घी, भैंस के घी या डालडा आदि घृत से यज्ञ करते और करवाते हैं जो कि पूर्ण रूप से गलत है इससे तो प्रदूषण दूर होने के बजाए और बढ़ता है। भैंस के घृत से तो आलस्य का संचार होता है। यज्ञ करने के लिये तो सर्वोत्तम मिलावट रहित गाय का शुद्ध देसी घृत ही है। यदि आप मात्र ६ ग्राम ऐसा शुद्ध देसी घी अग्नि में डालेंगे तो इस एक चम्मच से लगभग १००० किलो वायु शुद्ध होती है ऐसा यज्ञ पर शोध करने वालों ने पता लगाया है ।

(६) जो हवन सामग्री है वह ऋतु के अनुकूल ही होनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक ऋतु में यदि एक ही प्रकार की फल सब्जियाँ सदा लाभ नहीं करतीं तो ठीक वैसे ही सर्वदा एक ही प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियाँ सदा लाभ नहीं कर सकतीं । बहुत से आर्य समाजों में वही पैकेट में पड़ी पुरानी सामग्री से ही लोग हवन करते रहते हैं जिससे किसी प्रकार का लाभ नहीं होता बल्कि हानी ही होती है । तभी हमें प्रत्येक ऋतु के अनुकूल लाभ और हानी विचारकर ही हवन सामग्री का निर्माण स्वयं करना चाहिए जिसके लिये आप पंसारी की दुकान से सभी औषधियाँ जड़ी बूटियाँ मात्रा के अनुसार ओखली में कूटकर स्वयं तैय्यार कर सकते हैं जिसका कि आपको विशेष लाभ होगा । जैसे कि मान लें शरद ऋतु में लगभग २५ ऐसी औषधियाँ (जटामासी, चिरायता आदि) हैं तो प्रत्येक को लगभग २० ग्राम लें और पाऊडर करके आपके पास २५० ग्राम की सामग्री तैयार हो गई । जो कि समाप्त होने पर फिर से बनाई जा सकती है । ये ध्यान रखें कि सामग्री में चारों प्रकार के पदार्थों की मात्रा प्रचुर होनी चाहिए (क) मीठे पदार्थ (मेवा, खाण्ड आदि) (ख) रोगनाशक (नीम आदि) (ग) पुष्टिकारक (अखरोट, मखाने आदि) (घ) बलवर्धक, बुद्धिवर्धक (शंखपुष्पि, ब्राह्मी, गौघृत आदि)

(७) यज्ञ के जितने मंत्र हैं वे सब कंठस्थ होने चाहिएँ जिससे कि यज्ञ करने में आपका समय अधिक न लगे । इसके इलावा यज्ञ के मंत्रों के अर्थ भी आपको पता होने चाहिएँ । जैसे कि ईश्वरस्तुति- प्रार्थनोपासना, प्रातः साँयकालीन, स्वस्तिवाचनम्, शान्ति-करणम्, जन्मदिवस आदि के मंत्रों के स्पष्ट अर्थ आपको पता होने चाहिए। ऐसा होने से आपको यज्ञ करने में हृदय से विशेष प्रकार का रस आयेगा। और मंत्रों का उच्चारण आपका शुद्ध और स्पष्ट होना चाहिए तांकि सुनने वाले यजमानों को और दूर से सुनने वालों को भी विशेष आनंद आए और ये यज्ञ के प्रति आकर्षित हो पाएँ। वेद मंत्रों में वैसे ही आकर्षण और सौन्दर्य है जिससे कि सामने वाला सुनकर खिंचा चला आता है ।

(८) यज्ञ करते समय ये ध्यान रखें कि पर्याप्त समिधाएँ और पर्याप्त घृत अग्नि को अर्पण करते रहें तांकि अग्नि की लपटें ऊपर ऊपर तक जाएँ क्योंकि ऊँची लप्टों वाला यज्ञ सर्वोत्तम माना जाता है ।

(९) यज्ञ की अग्नि में कोई उच्छिष्ट (जूठा) पदार्थ , नमकीन, कृमीयुक्त (कीड़ों वाला) पदार्थ कभी न डालें ।

(१०) यज्ञ करने से पूर्व यज्ञ के स्थान को स्वच्छ कर लें ।

(११) यज्ञ करने के स्थान पर शोर शराबा न हो । प्रयास करें कि शांतमय वातावरण में यज्ञ हो और आपका ध्यान न भटके ।

(१२) यज्ञ करते समय गले में गायत्री मंत्र या ओ३म् के पट्टे डालें तांकि जिससे स्वयं की और सामने देखने वालों में भी यज्ञ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो ।

(१३) यदि संभव हो तो प्रतिदिन दो समय दैनिक यज्ञ घर में किया करें, यदि नहीं तो एक बार किया करें यदि इससे भी नहीं तो सप्ताह मे एक बार यदि इतना भी नहीं तो पूर्णमासी और अमावस्या को ही यज्ञ घर में किया करें ।

(१४) जिस स्थान पर यज्ञ किया हो उस स्थान पर वायु अत्यन्त शुद्ध होती है वहाँ पर किये गए प्राणायाम और ध्यान आदि का विशेष लाभ होता है ।

(१५) यज्ञ समाप्त होने पर यजमानों के साथ वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर भी थोड़ी सी चर्चा किया करें , या फिर रामायण, महाभारत या मनुस्मृति की शिक्षाप्रद बातों पर चर्चा किया करें जिससे कि अच्छे संस्कारो का संचार प्रत्येक यजमान के मन में होता रहे ।

(१६) यज्ञ की अग्नि में थोड़े से सूखे नीम के पत्ते या निमोलियाँ डालने से मच्छर मर जाते हैं ।

(१७) जन्मदिवस, वैवाहिक वर्षगांठ आदि पर पार्टीयाँ करके धन को व्यर्थ बहाने के बजाए कम खर्च में ही घर में बड़ा यज्ञ करवाया करें । जिससे कि सभी सगे सम्बन्धियों में अपनी प्रतिष्ठा भी बढ़े और पवित्रता का संचार घर मे हो ।

(१८) प्रयास करना चाहिए कि यज्ञ धूएँ रहित हो या कम से कम धूआँ उत्पन्न हो ।

(१९) यज्ञ करने का सही समय सूर्योदय से लेकर आगे ४५ मिनट तक का और सांयकाल में सूर्यास्त से पूर्व ३० मिनट का होता है अर्थात् सूर्य के प्रकाश में ही यज्ञ करने का विधान है ।

तो ऐसे ही अनेकों सुधार यज्ञ पद्धति में करने से ही यज्ञ का विशेष लाभ मिलेगा ।

ईश्वर की स्तुति कैसे करें?

-श्री मनोहर विद्यालंकार

सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य।
उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्यः।। -ऋ० ८/७०/१३
पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रः देवता। उष्णिक् छन्दः।

भूमिका- परमेश्वर के कुछ भक्तजन एकत्रित हुए। वे नित्य नियम से पूजापाठ, भजन-कीर्तन किया करते थे, किन्तु उनकी स्तुति कभी स्वीकार नहीं होती थी। उन्हें सदा यही प्रतीत होता था कि परमेश्वर उन पर न केवल प्रसन्न नहीं है, अपितु रुष्ट रहता है। उनकी समझ में नहीं आता था, कि उनकी स्तुति में क्या कमी रह जाती है, जो उनकी प्रार्थनाएं पूरी नहीं होतीं। इसके विपरीत नास्तिक जन- जो कभी सन्ध्या-पूजा नहीं करते, उन्नत और समृद्ध होते जाते हैं।

जब उनकी समझ में कुछ न आया तो वे लोग, पुरुहन्मा ऋषि के पास पहुंचे, और अपने अन्दर उठ रही विचिकित्सा को दूर करने के निमित्त प्रश्न किया- "हे भगवन्! आप ही हमारी शंका का निवारण कीजिये, और बतलाइये कि हम भक्तों को दुःख देने वाले उस ऐश्वर्यशाली परमेश्वर की स्तुति कैसे करें? हम तो उसकी स्तुति करते-करते थक गए, लेकिन हमारी कुछ सुनवाई नहीं होती। हम वैसे के वैसे गरीब बने हुए हैं, जबकि दूसरे लोग, जो परमेश्वर का नाम तक नहीं लेते आनन्द भोगते हैं, और मौज लड़ाते हैं।",

और कहा यह जाता है कि वह परमेश्वर सबको और विशेष कर अपने भक्तों को भोजन देने वाला है, सबको उत्पन्न करने वाला, प्रेरणा देने वाला और सन्मार्ग को दिखाने वाला है, तथा किसी से पराजित नहीं होता, दुष्टों का सामने झुकता नहीं।

इस पर पुरुहन्मा ऋषि ने कहा कि इसका रहस्य मैं बताता हूं। मैं अपने सारे जीवन के अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हूं। तुम इस पर विचार करो, और अमल करो। तुम्हारी स्तुति भी परमेश्वर के पास पहुंचेगी, और तुम आनन्द भोगोगे और मौज करोगे।

दोस्तो, मेरी बात को मामूली या किसी सामान्य आदमी की बात मत समझना। यह बात मेरे जीवन का सार है। मैं अपने सारे जीवन भर कुछ न कुछ करता रहा हूं, कभी निठल्ला नहीं बैठा। सदा गतिमय रहा हूं। बल्कि मेरी इस प्रवृत्ति के कारण लोगों ने मेरा नाम ही बहुत गति करने वाला = पुरुहन्मा = चक्रचरण = फिरकनी, रख दिया है। मेरा असली नाम तो अधिकतर लोग जानते ही नहीं हैं।

सच्ची स्तुति का रहस्य यह है कि 'क्रतुमिच्छत' कर्म की इच्छा करो। केवल सन्ध्या, भजन, पूजापाठ से कुछ नहीं होता। तुम्हारी जो इच्छा या कामना है, उसे पूरा करने के लिए कुछ कर्म करो। मतलब यह कि परमेश्वर की सच्ची स्तुति शब्द से नहीं कर्म से होती है, कथनी से नहीं, करनी से होती है।

अर्थ प्रश्न- (शरस्य) 'शृ हिंसायाम्' भक्तों को सुख देने वाले की (उपस्तुतिं) स्तुति (कथा राधाम) किस प्रकार सिद्ध करें? जो (भोजः) सबको भोजन देने वाला तथा (सूरिः) प्रेरणा देने वाला है और (अह्यः) अपराजित रहने वाला है। उत्तर- (सखायः क्रतुमिच्छत) मित्रो, काम करने की इच्छा करो।

इस मन्त्र में परमेश्वर के तीन नाम बताए गए हैं। वह परमेश्वर-

१. (भोजः) सबको भोजन देने वाला है, अगर तुम भी वैसा बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) काम करो। ८/७८/७ में भी कहा है कि (क्रत्वइत्पूर्णमुदरम्) पेट कर्म के द्वारा ही भरता है।

२. वह (सूरिः) सबको प्रेरणा देने वाला है, अगर तुम भी वैसा बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) प्रज्ञा=बुद्धि की कामना करो। जब तक स्वयं बुद्धिमान नहीं बनोगे दूसरों को भी प्रेरणा नहीं दे सकोगे।

३. वह (अह्यः) कभी किसी से पराजित नहीं होता, दुष्टों के सामने झुकता नहीं, कोई ऐसा काम नहीं करता कि पीछे लज्जित होना पड़े, अगर तुम भी ऐसा बनना चाहते हो तो (क्रतुमिच्छत) संकल्प की इच्छा करो, सच्चे संकल्प वाले बनो। जो आदमी दृढ़ और सच्चे संकल्प करने वाला है, वह कभी बुरा काम नहीं करेगा, किसी प्रलोभन के आगे नहीं झुकेगा और किसी से पराजित नहीं होगा।

शब्दार्थ- क्रतुः - कर्म - प्रज्ञा - संकल्प।
स्तुति - शब्दात्मक स्तुति। उपस्तुति - कर्ममय स्तुति।
पुरुहन्मा - (हन हिंसागत्योः) बहुत गति करने वाला।

-'गुरुकुल' (मासिक) के अंक से साभार

संस्कृत भाषा का महत्त्व और उसका शिक्षण

–डा० भवानीलाल भारतीय

स्वामी दयानन्द संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार को स्वदेश की उन्नति के लिए अत्यावश्यक समझते थे। उनका यह सत्य विश्वास था कि भारत की प्राचीन परम्परा और संस्कृति संस्कृत साहित्य में सुरक्षित है। आर्यों के प्राचीन धर्म, दर्शन, अध्यात्म तथा जीवन दर्शन को यदि समझना हो तो संस्कृत का ज्ञान होना अपरिहार्य है। उन्होंने स्वयं तो संस्कृत का प्रचार किया ही, अन्यों को भी इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिए कहा। स्वामीजी ने जब इस देश में जन्म लिया उस समय यहां विदेशी अंग्रेजों का राज्य था। राज कार्य की भाषा अंग्रेजी थी और उर्दू-फारसी का प्रचलन पढ़े लिखे लोगों में अधिक था। संस्कृत का अध्ययन ब्राह्मणों तक सीमित रह गया था और उनमें भी मात्र काम चलाऊ संस्कृत ज्ञान को ही पर्याप्त समझा जाता था जो पौरोहित्य कर्म में उनका सहायक होता। ऐसी स्थिति में संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन तथा प्रचार-प्रसार के लिए बद्ध परिकर होना, स्वामी दयानन्द की एक महती देन थी।

आदिम सत्यार्थप्रकाश (१८७५) के १४वें समुल्लास के अन्त में उन्होंने एक विस्तृत विज्ञापन परिशिष्ट रूप में दिया था जिसमें संस्कृत भाषा का महत्त्व, स्वल्प आत्म वृतान्त तथा कुछ अन्य उपयोगी विषयों का समावेश था। इस परिशिष्ट (विज्ञापन) का आरंभ वे इन पंक्तियों से करते हैं- ''इससे मेरा यह विज्ञापन है आर्यावर्त का राजा इंगरेज बहादुर से कि संस्कृत विद्या की ऋषि-मुनियों की रीति से प्रवृत्त करावे। इससे राजा और प्रजा को अनन्त सुख लाभ होगा और जितने आर्यावर्तवासी सज्जन लोग हैं उनसे भी मेरा कहना है कि इस सनातन संस्कृत विद्या का उद्धार अवश्य करें, ऋषि मुनियों की रीति से, अत्यन्त आनन्द होगा और जो संस्कृत विद्या लुप्त हो जायेगी तो सब मनुष्यों की बहुत हानि होगी इसमें कुछ सन्देह नहीं।'' (भाग १, पृ० ३५-३६)

यहां यह बात ध्यातव्य है कि स्वामीजी को ऋषि मुनियों की शैली से ही संस्कृत का पठन-पाठन इष्ट था। अर्थात् वे आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार को मानव के लिए हितकारी मानते थे और व्याकरण के अध्ययन में महर्षि पाणिनि तथा पतंजलि कृत अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के अध्ययन की उपयोगिता को आवश्यक समझते थे। अनार्ष ग्रन्थों की सहायता से संस्कृत का सम्यक् बोध नहीं होता यह उनका ध्रुव निश्चय था। इसी विज्ञापन में आगे वे लिखते हैं- ''परन्तु आर्यावर्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है जो कि उक्त प्रकार से प्रथम कही, उसी (रीति) से इस देश का कल्याण होगा अन्य देश भाषा से नहीं। अन्य देश भाषा तो जितना प्रयोजन हो उतना ही पढ़नी चाहिए और विद्या स्थान में संस्कृत ही रखना चाहिए।'' (भाग १, पृ० ४२)

संस्कृत की शिक्षा सुगम रीति से आर्ष पद्धति को अपनाने से ही हो सकती है और इसके लिए पाणिनीय शास्त्र के ज्ञान को स्वामीजी आवश्यक समझते थे। उन्होंने स्वयं अष्टाध्यायी का सुगम संस्कृत और हिन्दी में भाष्य लिखने का विचार किया और इसके बारे में एक विज्ञापन प्रकाशित कराया। इस विज्ञापन में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि संस्कृत विद्या की उन्नति सर्वथा अभीष्ट है और यह व्याकरण बिना नहीं हो सकती। संस्कृत के प्रचलित कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशु बोध आदि ग्रन्थों को वे संस्कृत शिक्षण में अपर्याप्त समझते थे क्योंकि इनसे वैदिक विषय का यथावत् ज्ञान नहीं होता। अतः उस विज्ञापन में उन्होंने स्पष्ट किया कि- ''वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान के बिना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता।'' (भाग १, पृ० १४२)

संस्कृत का आर्ष रीति से शिक्षण कराने के लिए स्वामीजी ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। उनके द्वारा फर्रूखाबाद में सर्वप्रथम ऐसी पाठशाला स्थापित की गई और वहां के धनी-मानी, सम्पन्न सेठ-साहूकारों को इसके संचालन का भार सौंपा गया। स्वामीजी का प्रयोजन तो इन शालाओं के द्वारा प्राचीन संस्कृत भाषा तथा आर्ष वाङ्मय का पुनरुद्धार करना था किन्तु हुआ इसके विपरीत। प्रचलित रीति के अनुसार इन विद्यालयों में भी संस्कृत अध्यापन को गौण कर दिया गया और अंग्रेजी आदि के पठन-पाठन को महत्त्व मिलने लगा। जब स्वामीजी को यह समाचार मिला तो वे अत्यन्त खिन्न हुए और शिकायत के लहजे में सेठ निर्भयराम को लिखा- ''कालीचरण रामचरण के पत्र से विदित हुआ कि आप लोगों की पाठशाला में संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अंग्रेजी व उर्दू-फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। उससे वह अभीष्ट जिसके लिए यह शाला खोली गई है सिद्ध होता नहीं दीखता। वरन् आपका यह हजारहा मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है।.. . आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्यावर्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है। वरन् संस्कृत रूपी मातृ भाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है।'' आगे वे **लिखते हैं कि अंग्रेजी का प्रचार तो (ब्रिटिश) सम्राट् की ओर से ही हो रहा है क्योंकि वह आज के हमारे शासकों की मातृभाषा है। पुनः हम उसके लिए उद्योग क्यों करें? उन्हें इस बात का खेद है कि हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत का सहायक वर्तमान में कोई नहीं है। पत्र में आगे उन्होंने सेठ निर्भयराम को निर्देश दिया है कि आगे से पढ़ाई के छः घण्टों में संस्कृत को तीन घण्टे मिले, अंग्रेजी को दो तथा उर्दू-फारसी को एक घण्टा दिया जाए। वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि छात्रों की संस्कृत में नियमित परीक्षा ली जाये और प्रश्नोत्तर (परीक्षा फल) उनके पास भेजा जाये। (भाग २, पृ० ५०१-५०२) उपर्युक्त पत्र से स्वामीजी की संस्कृति विषयक चिन्ता सुस्पष्ट हो जाती है। फर्रूखाबाद के बाबू दुर्गाप्रसाद को लिखे अपने पत्र में भी वे संस्कृत के बारे में ताकीद करना नहीं भूले। यहां लिखा, ''पाठशाला में संस्कृत का काम ठीक ठीक होना चाहिए।... इस पाठशाला में मुख्य संस्कृत जो मातृ भाषा है उसकी ही वृद्धि होनी चाहिए। वरन् फारसी का होना कुछ अवश्य (आवश्यक) नहीं। केवल संस्कृत और राजभाषा अंग्रेजी दो ही का पठन-पाठन होना अवश्य (आवश्यक) है।'' (भाग २, पृ० ५०४-५०५) स्वस्थापित संस्कृत पाठशालाओं से यदि संस्कृत शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती तो वे उनको चलाये जाने के पक्ष में नहीं थे। बाबू दुर्गाप्रसाद को लिखे एक अन्य पत्र में उन्होंने पूछा है कि ''पाठशाला में संस्कृत पढ़ के कितने विद्यार्थी समर्थ हुए। अथवा अंग्रेजी-फारसी में ही व्यर्थ धन जाता है सो लिखो। जो व्यर्थ ही हो तो क्यों पाठशाला खोली जाए।'' (भाग २, पृ० ६२५) स्वामीजी के पत्रों से उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे आजीवन संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। सामान्यजनों को ही नहीं, यहां के राजा-महाराजाओं को भी अपने राजकुमारों को संस्कृत पढ़ाने का निर्देश, उपदेश उन्होंने दिया।**

संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना-

आर्ष पाठ विधि से संस्कृत की शिक्षा देनी उचित है, इस मान्यता के कारण स्वामी दयानन्द ने कुछ नगरों में संस्कृत पाठशालाएं स्थापित कीं। उनका विचार था कि इन पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त छात्र पौराणिक कट्टरता से मुक्त होंगे तथा भावी जीवन में वैदिक विचारधारा तथा आर्य सिद्धान्तों को अपना कर समाज के उत्थान हेतु कार्य करेंगे। जिस पाठ विधि का प्रचलन वे अपनी पाठशालाओं में करना चाहते थे उसकी विस्तृत रूपरेखा उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिख दी थी। सर्वप्रथम फर्रूखाबाद में सेठ पन्नीलाल की आर्थिक सहायता से स्थापित संस्कृत पाठशाला से उन्होंने अपनी उपर्युक्त योजना का क्रियान्वयन करना चाहा। उन्हें यह उचित लगा कि विरजानन्द की पाठशाला में जिन छात्रों ने अध्ययन किया है वे आर्ष व्याकरण में निष्णात हैं और यदि उन्हें इन शालाओं में अध्यापक नियुक्त किया जाता है तो वे अवश्य ही छात्रों को आर्ष व्याकरण तथा ऋषि-मुनियों द्वारा लिखे गए अन्य शास्त्रों एक अध्ययन करायेंगे।

फर्रूखाबाद की पाठशाला के लिए उनका ध्यान अपने सहपाठी तथा व्याकरण के अद्वितीय विद्वान् पं० गंगादत्त शर्मा (चौबे) की ओर गया। उन्होंने १ सितम्बर १८७० को एक पत्र संस्कृत में लिख कर मथुरा भेजा। पत्र फर्रूखाबाद से भेजा गया था। पत्र के आरम्भ में 'स्वस्ति' के उल्लेख के साथ गंगादत्त शर्मा को दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद निवेदन किया गया था। पत्र में उन्हें शीघ्र फर्रूखाबाद आकर पाठशाला का कार्य सम्भालने के लिए कहा गया था। प्रतिदिन एक रौप्य मुद्रा (मासिक तीन रुपये) वेतन निश्चित किया गया तथा भविष्य में तरक्की कर देने की भी बात कही गई थी। यहां आने को स्वामीजी ने सर्व प्रकार से शोभन बताया तथा इसमें विलम्भ न करने के लिए कहा। साथ ही यह भी लिखा कि अध्यापन कार्य में सहायक अष्टाध्यायी, महाभाष्य, धातु पाठ, उणादि पाठ, वार्तिक पाठ, परिभाषापाठ, गणपाठ आदि ग्रन्थ वे साथ लेते आयें। इनके साथ ही वेद की पुस्तकें भी लायें। स्वामीजी ने तो मार्ग व्यय के लिए पं० गंगादत्त को दस रुपये भी भेजे थे किन्तु किसी वैयक्तिक समस्या के कारण ये पण्डितजी फर्रूखाबाद नहीं आये और स्वामीजी के भेजे रुपये लौटा दिये। (मूल पत्र के लिए भाग- १, पृ० ७-८ देखें)

विद्या की नगरी काशी में भी स्वामीजी ने संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी। जीवन-चरितों से पता लगता है कि इस पाठशाला के लिए जनता से धन एकत्र करने के लिए स्वामीजी ने कानपुर निवासी बाबू शिवसहाय को नियुक्त किया था। २९ मई १८७४ को काशी से भेजे एक पत्र में स्वामीजी ने उक्त सज्जन को काशी की पाठशाला की स्थिति से अवगत कराया- ''यहां की पाठशाला का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। एक छः शास्त्रों का पढ़ाने वाला बहुत उत्तम अध्यापक रखा गया है। वैसा ही एक वैयाकरण स्थापन किया गया है। दशाश्वमेध घाट पर स्थान लिया गया है बहुत उत्तम। केदारघाट का स्थान अच्छा नहीं था।'' (भाग १, पृ० ३३)

आर्य विद्यालय काशी की स्थापना दिसम्बर १८७३ में केदारघाट पर हुई थी। १९ जून १८७४ को इसे मित्रपुर भैरवी मौहल्ला में मिश्र दुर्गाप्रसाद के स्थान पर ले आया गया। कविवचनसुधा (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पादन में काशी से प्रकाशित मासिक) तथा बिहारबंधु के अंकों में विद्यालय की व्यवस्था सम्बन्धी एक विज्ञापन क्रमशः २० जून १८७४ तथा २८ जून १८७४ के अंकों में छपा। इस विज्ञापन में निम्न बातें विशेष उल्लेखनीय थीं-

१. पठन-पाठन का समय प्रातः दस-ग्यारह तक तथा मध्यान्ह में १ बजे से ५ बजे तक होगा।

२. अध्यापक होंगे पं० गणेश श्रोत्रिय।

३. छहों दर्शन, ईश से लेकर बृहदारण्यक पर्यन्त दस उपनिषद्, मनुस्मृति, कात्यायन और पारस्कर के गृह्य सूत्र, पश्चात् चारों वेद, उपवेद तथा ज्योतिष आदि वेदांग पढ़ाये जायेंगे।

४. परीक्षा में उत्तम अंक प्राप्त करने वाले छात्र पारितोषिक प्राप्त करेंगे।

५. छात्रों की मासिक परीक्षा होगी। त्रैवर्णिक छात्र वेद पढ़ सकेंगे। मन्त्र भाग छोड़ कर शूद्र सब शास्त्र पढ़ेंगे।

विज्ञापन के अन्त में आशा व्यक्त की गई थी कि इससे ही आर्यावर्त देश की उन्नति होगी। (भाग १, पृ० ३०-३५)

स्वामीजी ने बड़ी आशाएं लेकर संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की थी, किन्तु उनके स्वप्न साकार नहीं हुए। इन पाठशालाओं की असफलता के अनेक कारण थे। प्रथम तो आर्ष पाठ विधि से पढ़ाने वाले योग्य अध्यापकों का अभाव था। स्वामीजी ने इस कमी को अपने सहपाठियों को अध्यापक नियुक्त कर दूर करना चाहा किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। पं० उदयप्रकाश तथा पं० युगलकिशोर (दोनों सहपाठी) क्रमशः फर्रूखाबाद की पाठशालाओं में अध्यापक बनाये गए, किन्तु ये लोग छोड़ कर चले गये। योग्य छात्रों का न मिलना भी शालाओं की असफलता का एक कारण बना। अधिकांश छात्र संस्कृत पढ़कर पौराहित्य तथा फलित ज्योतिष के द्वारा जीवनयापन करने के उद्देश्य से इन शालाओं में आते थे। किन्तु स्वामी दयानन्द द्वारा निर्धारित पाठ विधि से प्रशिक्षित छात्र न तो पौराणिक कर्मकाण्ड (गणेश पूजन, नवगृह पूजन, मंदिरों में पुजारी का कार्य, श्राद्ध में भोजन, पौराणिक

क्रमशः.....७ पर

पृष्ठ.....१ का शेष

बातों को उन्होंने स्वीकार किया और तर्क व प्रमाणहीन बातों को छोड़ दिया। वह योगियों के सम्पर्क में भी आये। उनसे योग की क्रियायें सीखी। उनका योग केवल आसन व प्राणायाम तक सीमित नहीं था अपितु योग के सातवें व आठवें अंग ध्यान व समाधि का भी उन्होंने सफल अभ्यास किया था। समाधि में ईश्वर का साक्षात्कार होता है। इस स्थिति को भी उन्होंने प्राप्त किया था। इस प्रकार समाधि अवस्था में पहुंच कर उनकी बुद्धि सर्वथा निर्मल व पवित्र हो गई थी। इस बुद्धि से ही उन्होंने वेद व संसार के अन्य सभी ग्रन्थों की परीक्षा की। वह संस्कृत के अद्वितीय विद्वान थे। वह संस्कृत में धाराप्रवाह भाषण करते थे। प्रत्येक गूढ़ व गूढ़तम विषयों को भी उन्होंने विचार कर उनका सत्यस्वरूप जाना था जिसका उल्लेख व वर्णन उन्होंने अपने विश्व विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में किया है। ऋषि दयानन्द राग व द्वेष से बहुत ऊपर उठे हुए थे। वह संसार के किसी एक मत के आग्रही नहीं थे अपितु तर्क व युक्तियों से सिद्ध तथा प्राकृतिक नियमों के सर्वथानुकूल ज्ञान को ही वह सत्य स्वीकार करते थे। उनसे पूर्व उन जैसा सच्चा जिज्ञासु व शोधकर्ता विद्वान नहीं हुआ। इसी कारण वह अपनी सत्य-असत्य की परीक्षा करने में समर्थ बुद्धि से सब उपलब्ध धर्म, मत व पन्थ के ग्रन्थों की परीक्षा कर सबकी वास्तविकता को जानकर वेद तक जा पहुंचे थे। वेद ही उन्हें पूर्ण सत्य प्रतीत व सिद्ध हुए थे और उसमें ईश्वर प्रदत्त अपौरूषेय ज्ञान का साक्षात् हुआ था। उसे प्राप्त कर ही उन्होंने अपने गुरु व ईश्वर की आज्ञा से वेदों के सत्य व मानवमात्र के हितकारी स्वरूप व शिक्षाओं को देश व समाज में प्रचारित किया था।

महाभारत युद्ध के समय तक समस्त संसार का एक ही धर्म ग्रन्थ था और वह था वेद। वेदानुकूल ग्रन्थ भी समान रूप से मान्य होते हैं। वेद सूर्य के समान स्वतः प्रमाण और अन्य ग्रन्थ वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण होते हैं। यह सिद्धान्त ऋषि दयानन्द ने दिया है जो कि उनकी एक बहुत बड़ी देन है। वेदों का अध्ययन व तदनुरूप आचरण करने से मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास व उन्नति होती है। वेदों का अध्ययन करने वाला मनुष्य ईश्वर, आत्मा व सृष्टि के सत्यस्वरूप को जानता है। आत्मा वा मनुष्य जीवन के उद्देश्य को भी जानता है। वह उपासना से ईश्वर को अपनी आत्मा व बाहर सर्वत्र जानता वा देखता है। ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना से वह ईश्वर का सहाय प्राप्त करता है। ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए वह जीवन व्यतीत करता है। सद्कर्म एवं परोपकार के कार्य करना ही उसके जीवन का उद्देश्य होता है। वह अल्पाहार करता है। शुद्ध शाकाहारी अन्न सहित गोदुग्ध एवं फलों का सेवन करता है। वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन कर सत्य को प्राप्त होता है तथा लेखन व उपदेशों से अज्ञानी व जिज्ञासु लोगों को ज्ञान प्रदान करता है। वह सुख-सुविधाओं व विलासिता से रहित तप व पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करता है। वह जानता है कि मनुष्य जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिये ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र देवयज्ञ, माता-पिता की निष्ठापूर्वक सेवा व सम्मान, विद्वान अतिथियों का श्रद्धापूर्वक आतिथ्य तथा पशु-पक्षियों आदि सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना रखते हुए उनके जीवन यापन में साधक होना, बाधक न होना, इन कर्तव्यों का पालन वेदों का अध्ययन करने वाला मनुष्य करता है। वह अपने देश के प्रति निष्ठावान रहता है। विदेशी शक्तियों से मिलने वाले अकर्तव्य श्रेणी के प्रलोभनों को अस्वीकार करता है। देश के लिये वह अपना सर्वोपरि बलिदान तक कर देता है। ऐसे मनुष्यों का जीवन ईश्वर की भक्ति सहित परोपकार के कार्यों में व्यतीत होता है। इसी कारण से वेदों का महत्व है।

वेदों की इस महत्ता के कारण ही ऋषि दयानन्द के लिये वेद प्रचार करना आवश्यक था। लोग वेदों को भूल चुके थे। वेदों का स्थान अविश्वसनीय एवं वेदविरुद्ध मान्यताओं के ग्रन्थों, जो परस्पर विरुद्ध भी हैं, उन पुराणों एवं मत-मतान्तरों के ग्रन्थों ने ले लिया था। उपासना का स्थान अज्ञान व अंधविश्वासों से युक्त मूर्तिपूजा, नदियों में स्नान तथा अनेक तीर्थों के गमन आदि ने ले लिया था। मनुष्यों व उनकी आत्मा की उन्नति के लिए इन अवैदिक कृत्यों में निहित अविद्या व अन्धविश्वासों का खण्डन करना आवश्यक था। अतः वेदों के प्रचार, अविद्या का नाश, अन्धविश्वासों तथा मिथ्या सामाजिक परम्पराओं के उन्मूलन सहित देश का सर्वविध सुधार व देश को स्वतन्त्र कराने की दृष्टि को सम्मुख रखकर ऋषि दयानन्द ने दिनांक १० अप्रैल, सन् १८७५ को मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज का मुख्य कार्य वेद प्रचार कर वेदों की रक्षा करना, अपने धर्म बन्धुओं आर्य हिन्दुओं को अन्धविश्वास व मिथ्या परम्पराओं से छुड़ाकर उन्हें वेद व वेदानुकूल परम्पराओं को स्वीकार कराने के लिये किया जाने वाला एक आन्दोलन है। देश से अविद्या व अशिक्षा दूर करने में भी आर्यसमाज ने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल व कालेज तथा वेद विद्या के अध्ययन अध्यापन के लिये गुरुकुलों की स्थापना कर एक प्रभावशाली आन्दोलन को जन्म दिया जिसने देश में जागृति उत्पन्न की। लोगों ने परतन्त्रता की हानियों को समझा और सत्यार्थप्रकाश में स्वराज्य व सुराज्य की प्रेरणा को ग्रहण व धारण किया। इसी का परिणाम स्वदेशी राज्य की स्थापना के लिये किये गये आन्दोलन थे। सभी आन्दोलनों के पीछे प्रेरणा का स्रोत सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द के कहे गये वचन ही प्रतीत होते हैं।

आर्यसमाज ने देश व समाज से अज्ञान, अन्धविश्वास तथा मिथ्या सामाजिक परम्पराओं को दूर कर ज्ञान विज्ञान से युक्त विचारों व सन्ध्या-यज्ञ आदि परम्पराओं के प्रचार-प्रसार में सर्वाधिक योगदान दिया है। विदेशी लोगों द्वारा आर्य हिन्दुओं का किया जाने वाला धर्मान्तरण भी रोका व उसे कम किया था। धर्मान्तिरित बन्धुओं को शुद्ध किया और जो वैदिक धर्म की श्रेष्ठता के कारण इसकी शरण में आना चाहते थे, उनको ग्रहण व धारण किया। आर्यसमाज आज भी प्रासंगिक है। इसका मुख्य कार्य वेद प्रचार द्वारा अज्ञान व अविद्या का निवारण तथा राष्ट्र विरोधी शक्तियों से देश को सावधान करना है। अतीत में आर्यसमाज ने अपना कार्य बहुत ही उत्तरदायित्व व विश्वसनीयता से किया। वर्तमान में आर्यसमाज कुछ शिथिल हो गया है। ईश्वर करे कि आर्यसमाज अपनी शिथिलिता दूर कर पुनः पूर्ववत् सक्रिय हो जाये और देश के सामने उपस्थिति चुनौतियां का सामना कर उन पर विजय प्राप्त करे। ईश्वर सभी देशवासियों को सद्बुद्धि प्रदान करें। हम आन्तरिक एवं विदेशी तत्वों जो सत्य-सनातन-वैदिक धर्म से वैर रखते हैं, से भ्रमित न हों। स्वार्थ व ऐषणाओं का त्याग करें और जो इनसे प्रभावित हैं उनसे दूर रहे व अपने बन्धुओं को सावधान करें। हम सब ऋषिभक्त मिलकर प्राचीन ऋषियों के अनुरूप देश व समाज का निर्माण करें। परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान हमारी सबसे बड़ी सम्पत्ति व शक्ति है। उसका हमें जन-जन में प्रचार करना है। इसके लिए हम सत्यार्थप्रकाश को घर-घर पहुंचायें। सत्यार्थप्रकाश की महिमा महान् है। हम सत्यार्थप्रकाश का नियमित अध्ययन वा स्वाध्याय करें और दूसरों को प्रेरणा देते रहें, इस धर्म वा कर्तव्य पालन से हम पृथक न रहें। सत्यार्थप्रकाश एवं वेद के अध्ययनकर्ता किसी मत-मतान्तर के अध्येता से पराजित नहीं हो सकते। सत्यार्थप्रकाश का प्रचार सत्यधर्म प्रचार का मुख्य साधन है।

ओ३म्

पृष्ठ.....६ का शेष

और्ध्व-दैहिक कृत्य आदि) ही करा सकते थे और न फलित ज्योतिष को अपना सकते थे। अतः इन पाठशालाओं के लिए उनका आकर्षण कम ही रहा। पुनः इसके संचालन में भी त्रुटियां होती रहीं। स्वामीजी पाठशाला स्थापित कर उसका संचालन स्थानीय सेठ-साहूकारों तथा वहां के गणमान्य व्यक्तियों के सुपुर्द कर देते। ये लोग आगे चलकर शाला प्रबन्धन से दूर हट जाते अथवा उसमें कम दिलचस्पी लेते। स्वामीजी तो सतत भ्रमण में रहते थे इसलिए किसी एक स्थान पर टिक कर वहां की पाठशाला का प्रबन्ध देखना उनके लिए सम्भव नहीं था। इन्हीं कारणों से स्वामीजी द्वारा स्थापित ये पाठशालाएं धीरे-धीरे बन्द हो गईं। ७ मार्च १८७४ को लिखे एक पत्र से ज्ञात होता है कि अध्यापकों के प्रमाद से पाठशाला में छात्र कम हो रहे थे। इस पत्र में लिखा है- ''हमको अनुमान से ज्ञात है कि युगलकिशोर से पढ़ाया नहीं गया होगा... जो ऐसे ऐसे विद्यार्थी चले जायेंगे तो पढ़ाने वाले की त्रुटि गिनी जायेगी।'' (भाग १, पृ० ३२)

निश्चय ही आर्ष पाठ विधि की इन पाठशालाओं का बन्द हो जाना एक दुःखान्तिका थी।

पाद टिप्पणियां:

१. सिद्धान्त कौमुदी आदि व्याकरण के अनार्ष ग्रन्थों के प्रचलन के कारण पाणिनीय तथा पातंजल आर्ष प्रणाली का ह्रास हो गया था। यह कहा जाने लगा कि संस्कृत व्याकरण के ज्ञान के लिए कौमुदी ही पर्याप्त है, महाभाष्य का अध्ययन व्यर्थ है-

कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

२. पं० गंगादत्त का व्याकरण ज्ञान अद्वितीय था। इनके बारे में निम्न श्लोक प्रसिद्ध था-

पलायध्वं पलायध्वं भो भो दिग्गज तार्किकाः।
गंगादत्त समायातो वैयाकरण केसरिः।।

हे दिग्गज तार्किको, तुम भाग जाओ। नहीं जानते, तुम्हारे समक्ष वैयाकरण-केसरी आ गया है।

३. पं० शिवकुमार शास्त्री को इस पाठशाला में २५ रुपये मासिक पर अध्यापक रखा गया। वे यहां व्याकरण पढ़ाते थे। इनका वेद का ज्ञान पर्याप्त नहीं था। इसलिए इन्हें हटा कर पं० गणेश श्रोत्रिय को १५ रुपये मासिक पर वेद का अध्यापक नियत किया गया। (भाग ४ पृ० ६६३)

४. पं० उदयप्रकाश स्वामीजी के वरिष्ठ सहपाठी थे। किन्तु उनके विचार सदा पौराणिक ही रहे। फर्रूखाबाद की पाठशाला में रहते हुए उन्होंने छात्रों को स्वामीजी के विरोध में यह कह कर भड़काना चाहा कि यह तो 'मुण्डा बाबा' है। इसके बताये मार्ग पर चलने से तुम्हें पौरोहित्य वृत्ति (पुजारी का व्यवसाय, श्राद्धों में जाकर घर-घर जीमना आदि) से हाथ धोना पड़ेगा। जब स्वामीजी को पं० उदयप्रकाश की इन बातों की जानकारी मिली तो उन्होंने सहज भाव से इतना ही कहा- ''सोटा, लंगोटा वाला मुण्डा बाबा बोलता है सो तो पहले भी (मथुरा की पाठशाला में) बोलता था। मेरा सहपाठी है। लेकिन वेदोक्त धर्म के विरुद्ध बोलता है और पोप (पाखण्ड मत-पौराणिक धर्म) धर्म का प्रचार करता है, सो ठीक नहीं।''

५. स्वामीजी द्वारा स्थापित पाठशालाओं के लिए द्रष्टव्य-पत्र व्यवहार का चतुर्थ भाग (छठा परिशिष्ट पृ० ६५५-६६४) ये पाठशालाएं फर्रूखाबाद, मिर्जापुर, कासगंज (जिला एटा), छलेसर (जिला अलीगढ़), बनारस तथा लखनऊ में थीं।

स्त्रोत- स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

शोक समाचार

आर्य समाज कैसरबाग, लखनऊ के प्रधान श्री राम जायसवाल उम्र लगभग ८५ वर्ष, का आकस्मिक निधन दिनांक २७ मई, २०२४ को उनके निज निवास दुर्गापुरी लखनऊ में हो गया। स्व. जायसवाल जी कुछ दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे।

स्व. श्रीराम जायसवाल जी गुरूकुल कांगड़ी हरिद्वार में शिक्षित, महर्षि के सिद्धान्तों व मन्तब्यों के प्रखर समर्थक व प्रचारक थे। उनके देहान्त से आर्य समाज की अपूर्णीय क्षति हुई है जिसकी भरपाई सम्भव नहीं। ईश्वरीय व्यवस्था के आगे हम सभी विवश व नतमस्तक हैं। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से तमाम गणमान्य व स्वजनों की उपस्थिति में आचार्य मिल किशोर आर्य द्वारा सम्पन्न कराया गया।

दिनांक २६ मई,२०२४ को स्व. जायसवाल जी के निवास पर शांति यज्ञ व श्रद्धांजलि सभा का आयोजन डा. राम नरायन आर्य के ब्रह्मत्व में किया गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र.के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व समस्त पदाधिकारियों द्वारा स्व. श्री राम जायसवाल जी के देहान्त पर शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए ईश्वर से उनके परिजनों को यह दारूण दुःख सहन करने की शक्ति देने की प्रार्थना की है।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र ३० मई, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

वैदिक साधन आश्रम तपोवन के ग्रीष्मोत्सव में सभा प्रधान श्री देवेन्द्र पाल वर्मा का भव्य स्वागत

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के पंच दिवसीय ग्रीष्मोत्सव, ७५वाँ स्थापना दिवस एवं बाबा गुरूमुख सिंह के स्मृति दिवस समारोह में दिनांक १८ मई, २०२४ को आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी का भव्य स्वागत आश्रम के प्रधान श्री विजय आर्य व मंत्री इंजी. प्रेम प्रकाश शर्मा द्वारा

किया गया।

समारोह में पं. विष्णु मित्र वेदार्थी वैदिक विद्वान, पं. कुलदीप आर्य, श्री रमेश चन्द्र स्नेही, सुश्री मीनाक्षी पंवार, (सभी भजनोपदेशक) स्वामी आर्यवेश जी, प्रधान-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, आचार्य डॉ. अन्नपूर्णा जी, आर्ष कन्या द्रोण स्थली, स्वामी उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ, महात्मा चितेश्वरानन्द जी, स्वामी योगेश्वरानन्द जी, आर्य मुनि देव शर्मा विद्यालंकर, आचार्य आशीष दर्शनाचार्य, श्री सत्यव्रत जी, सुश्री इंदूबाला जी, श्री उमेश शर्मा, विधायक सहित सैकड़ों ऋषि प्रेमीजनों की गरिमामई उपस्थिति रही।

कार्यक्रम का सफल संचालन पंडित शैलेश मुनि सत्यार्थी द्वारा किया गया।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी ने दिनांक ३० मई २०२४ को अपनी वैवाहिक वर्षगांठ के शुभ अवसर पर अपने आवास नई दिल्ली में आर्य समाज हिम्मतपुर काकामई, एटा के संस्थापक आचार्य श्री जयप्रकाश शास्त्री जी के ब्रह्मत्व में पूर्ण वैदिक रीति से यज्ञ किया।

आर्य समाज जैसवां (मांट), जनपद मथुरा का वार्षिकोत्सव दिनांक २६ मई से २८ मई २०२४ तक बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया।

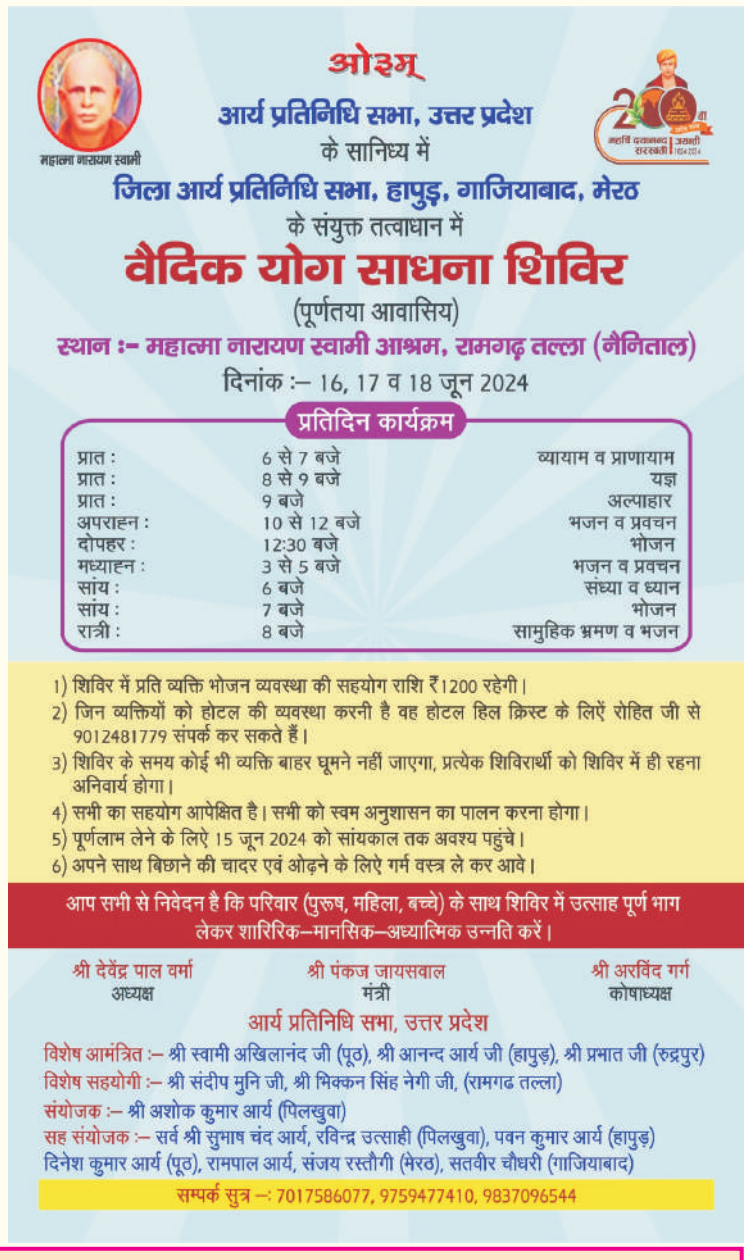

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।